

रेडियो-वार्ता-शिल्प

सिद्धनाथ कुमार



भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-सोकोवम-ग्रन्थमाला
सम्पादक श्री विद्यामक
श्री कश्मीरगण्डर्भ

प्रथम संस्करण
१९६१
मूल्य दो रुपये

प्रकाशक
श्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड शारावसी

मुद्रक
बाबुलाल शीत पत्रमुद्रक
सम्मति मुद्रकालय शारावसी

हिन्दीके सुप्रसिद्ध नाटककार
तथा
आकाशवाणीके महानिर्देशक
श्री जगदीशचन्द्र माथुर
को
घाबरसहित

निवेदन

१९५६ में जब मेरी नियुक्ति आकाशवाणी पटनाके बाली-विभागेमें हुई, तब मुझे रेडियो-बालीके निकटसे देखने और उसका अध्ययन करनेका अवसर मिला। मैं बालीमें मैं बहुत पहलेसे सुनता आ रहा था और जनके प्रति मोताबोंकी तिरस्कारपूर्ण प्रतिक्रियाएँ भी देखता आ रहा था। रेडियोके निकट रह कर मैंने अनुभव किया कि रेडियो-बालीकी सम्भावनाएँ कितनी बड़ी हैं और जनका उपयोग कर कोई बालीकार किस प्रकार अपनेसे दूर रहनेवाले हजारों व्यक्तियोंसे निकट सम्पर्क स्थापित कर सकता है। रेडियो बालीका क्षेत्र जो रेडियोसे प्रसारित विभिन्न प्रकारकी रचनाओंकी ज्येष्ठा बहुत व्यापक है कविता कहानी नाटक जादिकी रचना कबल साहित्यकार ही करते हैं पर रेडियो-बाली साहित्यसे परे रहनेवाले वैज्ञानिक राज नीतिक प्राध्यापक आदि सभी वर्गके व्यक्तियोंको प्रसारित करनी पड़ती है। पर यह आश्चर्यकी बात है कि प्रसारणके इतने वर्षोंके बाद भी हमारे यहाँ रेडियो-बालीके सम्बन्धमें अभी तक सम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया है कदा तो यह चाहिए कि अभी तक रेडियो-बाली बड़े इन्के डमेंसे बेखी जाती रही है, किसी बालीकारको आकाशवाणीकी ओरसे बाली-प्रसारणके लिए आमन्त्रित किया गया और उसमें दो-तीन घंटोंमें बाली कितकर प्रसारित कर दी। ऐसी स्थितिमें बालीएँ यदि अनाकर्षक होती हैं और मोताबों द्वारा जनका स्वागत नहीं होता तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं बीसती। लेकिन रेडियो-बालीको सम्भावनाओंको देखते हुए इस विषयपर सम्भीरतासे विचार होना चाहिए, ऐसा मुझे लगा। प्रस्तुत पुस्तकमें मैंने यही करनेका प्रयत्न किया है।

गों रेडियोसे मेरा सम्बन्ध निकट या दूर का पिछले बारह बरसों से रहा है पर प्रसारण-से सम्बन्ध विपणन विचार करनेके लिए इतना छोटा-सा अनुभव पर्याप्त नहीं होता। फलतः मैंने पाश्चात्य देशोंके हिस्बा वैपिचन कमिश्नेस पैमलिन बेनेट इनवर, रीजर मैलबेक, एल्फन ऐण्ड डोरोथियन एल्म एच० आर० बिलियमसन डॉन एस० कार्ताइस—जैसे प्रसिद्ध प्रसारणकर्ताओंके अनुभवोंसे सहायता ली है। इंग्लैण्ड और अने रिपब्लिक रेडियो-वास्तिक सम्बन्धमें क्रांती विचार हुआ है। यही यह कह दिया था कि प्रसारणके नियम सभी देशोंमें समान हैं हर देशकी प्रसारण सम्बन्धी अपनी-अपनी कोई प्राथम परम्परा नहीं है। अपनी 'रेडियो टॉक' पुस्तकमें बेनेट इनवरने कहा है—'मेरी इन विभिन्न देशोंके प्रोड्यूसरों और प्रसारण-कर्ताओंके साथ विचारपूर्ण और प्रेरक बातचीत हुई है। अमेरिका जगत्का दक्षिण अफ्रीका आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड आदिभूट टर्की आदि भारत वैश्वियम स्पेन आर्जेन्टिना आदि देशोंके और बोलोविया। इनमेंसे कुछके साथ हुए विचार-विमर्शके बाद अपने मोहकके अध्ययनसे मुझे पता चला कि एक चीज बहुत स्पष्ट दिखायी पड़ती है अच्छी रेडियो-वास्तिक विद्या प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषाके लिए समान है। जिन देशोंमें रेडियो-वास्तिकी केसापर विशेष ध्यान दिया गया है, उनका अनुभवी प्रसारणकर्ताओंके विचारोंके आधारपर मैंने इस पुस्तकमें अच्छी रेडियो-वास्तिक विद्याओंको ही प्रस्तुत करनेकी कोशिश की है।

उदाहरण-रूपमें आये उदाहरणोंके अतिरिक्त जितने अंश पुस्तकमें उद्धृत किये गये हैं सभी अंग्रेजीसे अनुबाधित करके इसलिए कि केवल हिन्दी ज्ञानवाले पाठकोंको भी पुस्तक समझनेमें कहीं कोई कठिनाईका अनुभव न हो। अंग्रेजीके मूल उदाहरण ज्ञान-वृद्धकर छोड़ दिये गये हैं।

यह सोचकर कि रेडियो-वास्तिकी सम्बन्ध उन लोगोंमें भी है, जो साहित्यकार नहीं हैं केवल-आय जिनका नियमित पैसा नहीं है, पुस्तकमें

सेवान-कक्षा-सम्बन्धी विषयोंको पर्याप्त उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है जिससे वैसे बार्ताकार भी समभावित हो सकें।

पुस्तकमें अतिरिक्त उदाहरण भारत-सरकारके पब्लिकरेलेशंस डिपार्ट्मन्ट द्वारा प्रकाशित 'रेडियो-संग्रह प्रसारिका' और 'आकाशवाणी प्रसारिका' में छपी रेडियो-बार्ताओंसे लिये गये हैं। लेखक इनके छात्रवृत्तको सामार स्वीकार करता है। जिन व्यक्तियों स्वसोचि भी उदाहरण दिये गये हैं उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है।

उदाहरणोंके सम्बन्धमें यह निवेदित करना उचित लगता है कि उदाहरण लेते समय किसी रचनाकारकी निन्दा या प्रशंसा करना लेखकका कर्तव्य नहीं रहा है। उसने रचनाकारोंको अपने सामने रखा ही नहीं है, केवल उनकी कृतियाँको देखा है, और सैद्धान्तिक कठौटीपर जो वहाँ उचित बात हुई है, उनको वहीं रखा दिया है। उन सब लेखकोंके प्रति लेखक कृतज्ञ है, जिनकी रचनाओंके उदाहरण इस पुस्तकमें लिये हैं।

—सिद्धनाथ कुमार

विषय-सूची

रेडियो-वार्ता साहित्यका एक नया रूप	९
रेडियो-वार्ताकी छोटाएँ	१८
रेडियो-वार्ता और माधित सम्बन्ध	२४
रेडियो-वार्ता और श्रोताकी मानसिक बुद्धि	३१
रेडियो-वार्ता और श्रोताकी ग्रहण एवं स्मरण-शक्ति	४१
रेडियो-वार्ता और व्यक्तित्वका प्रश्न	६१
रेडियो-वार्तासि सम्बन्धित तीन प्रश्न	७०
रेडियो-वार्ता-वेबनकी ठीयाटी	७९
रेडियो-वार्ता प्रारम्भ मध्य और अन्त	८७
रेडियो-वार्ताकी भाषा-शैली	१६
रेडियो-वार्ता-प्रसारण	११८
रेडियो-वार्ता और प्रो० बर्नार्डके निष्कर्ष	१२९
कमूठ रचनाकारोंकी सूची	१३१

God forbid that I should set up for a teacher! I purpose merely to confide to my readers what little I have learned..... reminding them meanwhile that even in the least important books one sometimes finds small matters deserving attention.

—Carlo Goldoni
(Italian Dramatist)

रेडियो-वार्ता साहित्यका एक नया रूप

‘म भाषसे रेडियो-सेखनके सम्बन्धमें कुछ बातचीत करूँगा। हमारी यह बातचीत बीसी ही होमी बीसी किसी पाकमें होटलमें या ब्राईग-रूममें बैठे दो-चार मित्रोंकी हाती है। लेकिन अगर मुझसे अभी कुछ बसाबसानी हो जाय और आपकी कापड़की खड़कड़ाहट सुनायी पड़ जाय तो आप सोचने लगेंगे चापद मेरे हाथमें कापड़के कुछ पत्ते हैं घायब मैं आपसे बातचीत न करके इन पत्तोंको ही पढ़ रहा हूँ। आपका अनुमान सही होगा। आपसे मैं जो बातचीत कर रहा हूँ, वह मौखिक नहीं लिखित है। मेरी यह वार्ता लिखित वृत्ति है रचना है। आप रेडियो सुनते हैं तो आपने यह ‘वार्ता’ शब्द बार-बार सुना होगा। लेकिन ‘साहित्य-दर्पण’ या ‘रस-संसार’ या साहित्य-शास्त्रक किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें इसकी बर्षा नहीं मिलेगी। बात यह है कि अभी ३०-३५ बय पहले तक ‘वार्ता’ नाम की रचनाका अस्तित्व नहीं था। रेडियोके आविष्कारके बाद इसका जन्म हुआ है, केवल इसीका नहीं, रेडियोके लिए लिखित साहित्यके कई और रूपोंका भी जन्म हुआ है।—इन पंक्तियोंसे इस सेखन को बार्ड-बय पहले साहित्यके नये रूप वार्ताक्रममें प्रमादित अपनी ‘रेडियो-सेखन’ दीपक वार्ता प्रारम्भ की थी। सचमुच रेडियोके आविष्कारने रेडियो-नाटक रेडियो-कपक आदि दिन मये साहित्य-रूपोंको जन्म दिया है, उनमें रेडियो-वार्ताका भी महत्वपूर्ण स्थान है। देवी या बिबेयी, कोई भी रेडियो-सेखन

नहीं है, वहसि रेडियो-वार्ताएँ नहीं प्रसारित की जाती। इनका महत्त्व इस लक्ष्यसे ही समझा जा सकता है कि १९१६ में आकाशवाणीके विभिन्न केन्द्रोंसे प्रसारित वार्ताओं एवं परिचयवालोंकी संख्या ४९४६ थी। यह संख्या केवल अपने देखके लिए प्रसारित कार्यक्रमोंकी है, विदेशोंके लिए प्रसारित कार्यक्रमोंमें हुई वार्ताओंकी संख्या मूल्य है। घामीय क्षेत्रों बाजारों तथा विषयके कार्यक्रमोंमें प्रसारित वार्ताओंकी संख्या भी इसमें नहीं जोड़ी गयी है। १९५६ के बाद तो आकाशवाणी-केन्द्रोंकी संख्या और भी बढ़ी है उनके साथ ही प्रसारित कार्यक्रमोंकी संख्यामें भी वृद्धि हुई है। १९५८ के वार्षिक विवरणसे बात होता है कि विभिन्न केन्द्रोंसे प्रति वर्ष अनेकी तथा प्रादेशिक मापानोंमें इस प्रकारसे अधिक वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं।

रेडियो-वार्ताओंका यह महत्त्व केवल संख्याकी दृष्टिसे ही गुणकी दृष्टिसे नहीं। रेडियो-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित सबसे अनाद्यतन और नीरस रेडियो-वार्ताओंकी ही समझा जाता है। रेडियो सुनते समय कोई वार्ता सुक हुई नहीं कि मिला कह बैठते हैं—'अरे, यह तो वार्ता सुक हुई कहीं कुछ तो जगह बनाओ, नहीं नीत-नीत देखो। पन्नील क्योंकि संवर्धित प्रसारणके बाद भी हमारे यहाँकी वार्ताओंमें इसकी अन्ति नहीं जा पामी है कि वे अंतर्गतके ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकें। आदर्श प्रसारणकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो बिदेसी प्रसारण-केन्द्रोंको भी पृथक् सम्बोधनक नहीं कहा जा सकता है। अमोनेल वैश्विक अपनी पुस्तक 'नू बार आन दि एयर' [प्रकाशन-काल १९४०] में बी० बी० सी० के कार्यक्रमोंकी आशय प्रसारणकी कठौटीपर परलते हुए कहते हैं—'यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अन्तर्देशीके अवसय अनुपातके प्रसारणके बाद भी अत्यन्त कार्य क्रमोंकी संख्या अत्यन्त कार्यक्रमोंकी अपेक्षा अधिक है।

अपने यहाँ रेडियो-वार्ताओंको भी कलात्मक एवं आकर्षक रूप मिल जाना चाहिए या यह नहीं मिल सका है इनका मुख्य कारण यह है कि

हमारे मूकके व्यक्तिकांश सोचने यह स्वीकार नहीं किया है कि रेडियो-बार्ता साहित्यका एक बिल्कुल नया रूप है—ऐसा रूप, जो रेडियोके आविष्कार के पूरे नहीं था। लोग पहले रेडियो-नाटकको जैसे रंगमंच-नाटकसे भिन्न नहीं समझते थे, वैसे ही रेडियो-बार्ताको निबन्ध या श्रेष्ठसे भिन्न नहीं मानते हैं। यह प्रथमताकी बात है कि अब रेडियो-नाटक रंगमंच-नाटकसे भिन्न समझा जाने लगा है। लेकिन रेडियो-बार्ताके सम्बन्धमें अभी ऐसी बात नहीं है। अभी भी आकाशवाणी-केन्द्रोंमें पाठ-टिप्पणियोंसे भरी एकी रचनाएँ अबाधित ही प्रसारणाय जाती रहती हैं जिन्हें केवल या प्रबन्धके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता और जिनका पाठ किया जाय तो कम-से कम ४०-५० मिनट अवश्य लगे। अभी भी ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो बातचीतके प्रथममें कहते हैं— मैं भी रेडियोसे एक निबन्ध प्रसारित करना चाहता हूँ। यह बात नहीं कि ऐसे निबन्ध आकाशवाणीसे प्रसारित नहीं होते होते हैं, और बावकि नामपर अधिकतर निबन्ध ही प्रसारित होते हैं। इस साधारण-सी बातपर भी ध्यान नहीं दिया जाता कि रेडियोसे प्रसारित रचनाएँ मात्र श्रम्य होती हैं, और उनको सफलता अपने श्रम्य रूपमें ही बोधवन्ध होतमें हैं। अवाहरणके लिए कुछ प्रसारित बार्ताओंके अर्थ प्रस्तुत हैं। 'कलाने कलमें यथाय और कल्पना' हीर्षक बार्ताका एक अंश इन प्रकार है—

‘इस प्रकार कला-सहिष्णुता प्रथमबद्ध रूप में बनता है—

कला सुहि

भूत

; अन्तरका प्रहृष्य धावेग या भाव

घटीर

यवार्थसे लाभ इस भावका सम्बन्ध

घीर रूप-ग्रहण :

प्राण

सौन्दर्य प्रान्तर एवं बाह्य

भारतमा

: रस :

लक्ष्य या फल

: आनन्द :'

[आकाशवाणी प्रसारिका नवंबर-जून १९५६]

एक दूसरी बार्ता मस्त्रकर्मों मगोरंजनके साधनका एक बंध सञ्चाल है—
इस प्रकार समाजका मगोरंजन करवैवाली जससेकनीय जातिवा
निम्न हैं—

- १ कुचामण परबतसरके कठमुतमी नचानेवाले नट ।
- २ बीडबाना तथा परबतसरके भास-पास रहनेवाले तरह तासबाले ।
- ३ भानोर-बाडमेर भादिके कच्छी घोड़ी नचालेवाले तरपरे
कुम्हार बामी ।
- ४ बीकानेर बुक, पोकरन तथा बुटेलके भोसे हडबूमीके भोसे,
मेवजीके भोसे और मीणाजीके भोसे ।
- ५ बीसलमेर बाडमेरके लंघे तथा मिरासी ।
- ६ भानोरके सरगरे तथा डोधी ।

उपरोक्त सब जातियोंका प्रमुख कार्य बायन बादन मुख्य धीर नाच्य
द्वारा अपने समसामोका मगोरंजन करवा है ।'

[आकाशवाणी प्रसारिका जनवरी-मार्च १९५६]

पहला जहरण अपने धम्य कर्मों जैसे बोध्ययम हो सकता है इसकी
कल्पना नहीं की जा सकती । दूसरे जहरणमें जो इतने नाम एक साब
पिनामे लये हैं उन्हें केवल एक बार सुनकर प्योता क्या उन्हें स्मरण रख
सकता है ? १ २ ३ बादि क्रमांकोंके पाठसे श्रोता क्या यह नहीं समसेपा
कि बार्ताकार उससे बाधपीत न कर उसे अपना निबन्ध सुना रहा है ? इस

अधमें जाये निम्न' और 'उपयुक्त' शब्द क्या इस शब्दको प्रमाणित नहीं करते कि रचना शब्द नहीं पाठ्य है ? शब्द रचनामें तो ऊपर या नीचे नामकी कोई भीज नहीं होती । शाल्प यह कि हमारे यहाँसे अधिकोद्यत निबन्ध ही प्रसारित किम्मे जाते हैं । आकाशवाणीके मूतपूर्व डापरेक्टर डॉफ प्रोवाम्स श्री सोमनाथ चिब दि स्पेन्स बड' हीपक अपने निबन्धमें आकाश वाणीसे प्रसारित अंग्रेजी बार्ताओंके सम्बन्धमें कहते हैं कि इनके अधिकतर आलेख [Scripts] निबन्ध-वैदे सम्ये हैं । हिन्दी बार्ताओंके सम्बन्धमें भी यह अक्षरस्य सत्य है । ऐसी स्थितिमें यदि बार्ताएँ नीरस होती हैं और उन्हें कोप नहीं सुनना चाहते तो इसमें व्याख्यकी कोई बात नहीं है ।

रेडियो-बार्ताओंकी वर्तमान स्थिति सन्तोषजनक नहीं है पर इसे परि बठित किया जासक्या है । बार्ताओंका स्वभाव नीरस और अनाक्यक रहना नहीं है । सच कहा जाय तो बार्ताओंका स्वभाव सरस और मनोरञ्जक होना ही है । बार मित्र एक साथ बैठते हैं और आपसमें बातें करते हैं । क्या ये बातें नीरस होती हैं ? बात करनको कक्षा बामनेबाका कोई मित्र अपने अनुभव सुनाने समता है कमी-कमी गम्भीर विषयोंकी भी चर्चा छेड़ देता है तो क्या इससे बार्ताकारोंमें नीरसता या बाठी है ? कदापि नहीं । रेडियोने तो हमें सामूहिक प्रेषणीयताका ऐसा अद्भुत साधन उपसम्प्य करा दिया है कि हम एक स्थानपर बैठे एक ही साथ हजारों-साखों व्यक्तियोंको अपने अनुभव सुना सकें उन्हें अपने विचारोंसे अवगत कर सकें । लेकिन यह ठमी सम्भव है, जब हम रेडियोके माध्यमकी अपेक्षाओंको ससकी सीमाओं और सम्भावनाओंको समर्ने । बार्ताओंके वृत्त माध्यमके लिए छिचित रचनाओंको रेडियोके शब्द माध्यमसे प्रस्तुत करनेसे ऐसा नहीं होगा । संवीतका आनन्द हम बार्ताओंसे लेनेका प्रयास नहीं करते, पर बार्ताओंके लिए छिचित रचनाओंके आनन्द हम कानोंका देना चाहते हैं । हमारे यहाँकी रेडियो-बार्ताओंकी अक्षरस्यताका यही रहस्य है । बी० बी० सी० के अनुभव

वार्ताकारोंमें रेडियोके अथवा माध्यमकी अपेक्षाओंकी समझा है और उनके अनुकूल कार्य किया है। इसीलिए डेसमण्ड मेकरबी वाक्यकोड डेविड ए० वे० एडन, वे० बी० प्रीस्टबी आदि प्रसिद्ध वार्ताकारोंको लोग उत्सुकताके साथ सुनते रहे हैं।

रेडियो-वार्ताकारको सर्वप्रथम यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रेडियो-वार्ता मने प्रकारकी रचना है, निबन्धसे यह बिलकुल भिन्न है। लिखित होनेपर भी यह मात्र श्रव्य है। किस प्रकार कोई भी नाटक रेडियो-नाटक कहकर प्रसारित नहीं किया जा सकता उसी प्रकार कोई भी निबन्ध वार्ता कहकर नहीं प्रसारित किया जा सकता। मुक्ति निबन्ध और प्रसारित वार्तामें अन्तर है। जैसे प्रसारणके लिए रचनात्मक-नाटकको रेडियो-नाटकके रूपमें रचानास्थिति करना पड़ता है उसी प्रकार निबन्धको भी यदि हम प्रसारित करना चाहें ही तो उसे वार्ताके रूपमें रचानास्थिति करना पड़गा। इसे उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है।

एक सङ्गमको पंचवर्षीय योजनामें संचार एवं परिवहनके विकास पर वार्ता प्रसारित करनेके लिए आमन्त्रित किया गया। उनकी वार्ता जो वास्तवमें एक निबन्ध ही थी का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार था—

‘घर-रचनामें जो स्थान शिगर्बों एवं कमनियोज है वही स्थान राष्ट्रके जीवनमें संचार एवं परिवहनका है। वार्षिक युद्ध-सम्बन्धी प्रघात कौय सांस्कृतिक एवं सामाजिक सभी बुद्धिपति संचार एवं परिवहन राष्ट्र के समुत्थानके लिए अनिवाय उत्पन्न हैं। कदाचित् इसी बुद्धिकोपसे ब्रिटिश शासकोंने इसीसर्वी शताब्दीमें ही भारतवर्षमें संचार एवं परिवहनका स्वर्ण आरम्भ कर दिया था। सबसे हम साधनोंका निरन्तर विनाश होता रहा है और अद्यावधि इस क्षेत्रमें आघातीय विकास हुआ है।

स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद संचार एवं परिवहनके साधनोंका विकास अस्पर्शनीय गतिसे हुआ है। प्रथम पंचवर्षीय योजनामें कृषि सिंचाई और धन्तिका साधनके साथ परिवहन और संचारका स्थान भी विकासके तीन

प्रमुख क्षेत्रों में रखा गया। इस योजना में संचार एवं परिवहन के साधनों के इसके लिए अनुमानतः ५३१.४६ करोड़ रुपयों का व्यय हुआ।

देश में संचार और परिवहन के प्रसार के लिए सरकारने उदार नीति ली है। प्रथम योजनाबद्ध में डाक-घार विभाज्य के लिए प्रायः ३९.५ लाख रुपये खर्च किये गये हैं। सरकारने यही योजना थी कि वो हजार सर्वव्यापक हो मीसके अन्तरपर बसे हुए प्रत्येक गाँव में डाकघर सोले परे। इस योजनाके अनुसार डाकघरोंकी संख्या ३६ हजारसे बढ़कर ५५ हजार हो गयी। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत समागत २० हजार और डाकघर खोलनेका लक्ष्य है।

निष्पत्तिका यह अंश वास्तविक रूपमें परिवर्जित होनेपर इस प्रकार का—

‘आपने कभी सोचा है, हमारा शरीर किस प्रकार सुखाद अपने काम करता है? यह हमारी शिरायों, बमनियों और स्नायुओंका प्रभाव है। एहीके जरिये एक अणुका जून दूसरी जगह पहुँचता है। एक स्थानकी वेतना दूसरे स्थानपर पहुँचती है। इन्हींकी प्रेरणासे हम जीवित हैं, और सुखाद व्यसं काम कर रहे हैं। कोई राष्ट्र भी सुखाद व्यसं काम करे, इसके लिए जरूरी है कि उसके शरीरमें भी शिरायें हों बमनियों हों स्नायु हों। आपका समाचार आपसे चीन सी मीस दूर रहेवाके आपके मित्रोंके पास पहुँच सके आपके जानेके लिए पंजाबका सेठुँ आपके पास आ सके शासन बचानेके लिए बिस्वीका आदेश पटना पटनाका आदेश आरु गया बरभगा भावि प्रहरोंमें पहुँच सके अठरेकी बड़ीमें बेदाकी सता एक छोरेसे दूसरे छोरेपर आ सके आपके मनोरंजनके लिए बननेवाली फिल्में बम्बई आपके लभरम आ सके—इस सबके लिए सामन चाहिए, संचार और परिवहनके साधन—रेल टार डाक सबक हवाई बहुराब बरीरहू। ये ही राष्ट्रके शरीरकी शिरायें, बमनियों और स्नायु हैं। राष्ट्रका जीवन और स्वास्थ्य इन्हींपर निर्भर करता है। आषादी मित्रनेके बाद हमारी

राष्ट्रीय सरकारमें इनके महत्वको समझा है और इनके विकासके लिए कच्चातार कोशिश करती रही है। पहली पंचवर्षीय योजनामें किम तीव्र प्रमुख क्षेत्रोंके विकासपर विचार और लिया गया उनमें कृषि सिंचाई और घनिष्ठके साध-साध संचार और परिवहनका भी स्थान था। इनके विकासपर लगातार पाँच सौ इन्फ्रटीस इयामन्स बार, छः करोड़ रुपये खर्च किये गये। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि देशके हर आसानीके लिए अनमन पन्द्रह फीस खर्च किये गये। इसीसे पता चल सकता है कि संचार और परिवहनको कितना महत्वपू्ण समझा गया।

अब हम इनके विकासपर अलग-अलग ध्यान दें। सबसे पहले डाक-घरोंके विकासको देखें। भारत पाँचोंका देश है, गाँव-गाँवमें सिंचा और ज्ञानका प्रकाश पहुँच सके इसके लिए पाँचोंके डाकघरोंके विकासको बढ़ती समझा गया। डाकघरोंके विकासके लिए काफ़ी बचत नीति अपनायी गयी। पहली पंचवर्षीय योजनामें यह कथन रखा गया कि हर ऐसे गाँवमें जिसकी आबादी दो हजार या उससे अधिक हो एक डाकघर खुले और ऐसा हुआ भी। दूसरी पंचवर्षीय योजनामें पाँचोंके और सुविधा देनेके लिए, यह तय किया गया कि दो मीलके क्षेत्रमें रहनेवाले ऐसे दो-तीन गाँवोंका मिला कर भी जिसकी आबादी दो हजार या उससे अधिक हो एक डाकघरना खुले ही निकटके दूसरे डाकघरानेसे उसकी दूरी कम-से-कम तीन मील बकर हो। इस योजनाके अनुसार काम हो रहा है। पहली योजनाके मुकामे डाकघरोंकी संख्या केवल छत्तीस हजार थी योजनाके उत्तर होते-होते यह पचास हजार हो गयी यानी पाँच वर्षोंमें उन्नीस हजार डाकघर खुले यानी वषरमें हर रोज़ बाहरसे भी अधिक डाकघर खोले गये।

अगर एक ही सामग्री को कहीं प्रस्तुत की गयी है और उन्हें देखनेसे स्पष्ट बात हो सकता है कि दोनोंमें फ़रक अन्तर है। एक मुद्रणके द्वारा माध्यमके लिए है, दूसरा रैडियोके अर्थ माध्यमके लिए। एक निराश्रित है दूसरा, बार्ता। रैडियोसे बार्ता ही प्रसारित होनी चाहिए, निरन्तर नहीं।

वार्ताको हम 'वातचीत' भी कहते हैं। अंग्रेजीमें इसका पर्याय 'रेडियो-टाक' (Radio Talk) है।

मित्रत्व और रेडियो-वार्ताका अन्तर स्पष्ट करनेके बाद यह दुहरानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि रेडियो-वार्ता साहित्यका एक विकसित नया रूप है। यद्यपि इसका रूप निश्चित होना है पर यह रूप और पाठ्य नहीं केवल श्रव्य है। श्रव्य लेखकोंकी मति रेडियो-वार्ताकार भी सिद्धता है, लेकिन यह ध्यानमें रखकर लिखता है कि उसको रचना पाठकों और दर्शकोंके पास नहीं, योशामाके पास पहुँचानेवाली है, अतः उसे अपने श्रव्य रूपमें प्रभावशाली होना चाहिए। रेडियोके श्रव्य माध्यमकी सीमाओं और शक्तिसे परिचित होकर ही कोई व्यक्ति रेडियो-वार्ता-लेखन एवं प्रसारण में सफल हो सकता है।

राष्ट्रीय सरकारने इनके महत्त्वको समझा है और इनके विकासके लिए सम्यक्तर कोशिश करती रही है। पहली पंचवर्षीय योजनामें जिन तीन प्रमुख क्षेत्रोंके विकासपर विशेष ध्यान दिया गया उनमें ऊपरी सिंचाई और शक्तिके धाम-साध संचार और परिवहनका भी स्थान था। इनके विकासपर सम्प्रथम पाँच सौ इकतीस करोड़ रुपये खर्च किए गये। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि देशके हर भागमेंके लिए सम्प्रथम पन्द्रह रुपये खर्च किये गये। इसीसे पता चल सकता है कि संचार और परिवहनको कितना महत्त्वपूर्ण समझा गया।

अब हम इनके विकासपर अल्प-अल्प ध्यान दें। सबसे पहले डाक-घरोंके विकासको देखें। भारत पाँचोंका देश है गाँव-गाँवमें शिक्षा और ज्ञानका प्रकाश पहुँचाने के इसके लिए पाँचोंके डाकघरोंके विकासको जरूरी समझा गया। डाकघराने जो करनेके लिए काफ़ी उद्यम नीति अपनायी गयी। पहली पंचवर्षीय योजनामें यह कल्प रखा गया कि हर ऐसे गाँवमें जिसकी आबादी दो हजार या उससे अधिक हो एक डाकघर खुले और ऐसा हुआ भी। दूसरी पंचवर्षीय योजनामें पाँचोंके और मुंबिका क्षेत्रके लिए यह व्यवस्था किया गया कि दो मीलके दूरीमें रहनेवाले ऐसे बी-तीन गाँवोंको मिला कर भी जिसकी आबादी दो हजार या उससे अधिक हो, एक डाकघराना खुले ही विकसित दूसरे डाकघराने उसकी दूरी कप-से-कम तीन मील बकर हो। इस योजनाके अनुसार काम ही चला है। पहली योजनाके धुर्मे डाकघरोंकी संख्या केवल छत्तीस हजार थी, योजनाके अंत में छत्तीस हजार पचास हजार हो गयी यानी पाँच वर्षोंमें उन्नीस हजार डाकघर खुले यानी देशमें हर दो-दो बारहोंसे भी अधिक डाकघर खोले गये।

अगर एक ही घामटी दो वर्षोंमें प्रस्तुत की गयी है, और उन्हें देखनेसे स्पष्ट पता हो सकता है कि दोनोंमें कितना अंतर है। एक मुद्राके द्वारा माध्यमके लिए है, दूसरा रैडियोके धर्म माध्यमके लिए। एक निष्कर्ष है दूसरा वार्ता। रैडियोके वार्ता ही प्रसारित होनी चाहिए, निष्कर्ष नहीं।

वार्ताकी इस 'बसत' भी कहते हैं। अंग्रेजोंमें इसका पर्याय 'रेडियो-टॉक (Radio Talk) है।

निकम और रेडियो-वार्ताका अन्तर स्पष्ट करनेके बाद यह दुर्घटनाकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि रेडियो-वार्ता साहित्यका एक किन्तु नया रूप है। यद्यपि इसका रूप सिद्धित होया है पर यह दुस्य और पाठ्य नहीं केवल ध्वय है। अग्य लेखकोंकी भाँति रेडियो-वार्ताकार भी सिरास्र है लेकिन यह ध्यानमें रखकर सिद्धता है कि उसकी रचना पाठकों और स्वयंके पास नहीं योथाओंके पास पहुँचनेवाली है, अतः उसे अपन धम्म रूपमें प्रभावशाली होना चाहिए। रेडियोके धम्म माध्यमकी सीमाओं और ध्वनियोंने परिचित होकर ही कोई व्यक्ति रेडियो-वार्ता-लेखन एवं प्रसारण में सफल हो सकता है।

रेडियो-वार्ताकी सीमारें

रेडियो-विषयके अनुभवी विद्वान् कहते हैं कि रेडियो-कायकर्मोंका श्रोता अन्धा होता है वह अपनी आँखोंसे काम नहीं के सकता। लेकिन प्रसारण के सम्बन्धमें गम्भीरतासे विचार किया जाय तो ज्ञात होता कि रेडियो-कायकर्मोंका प्रसारणवर्ता भी अन्धा होता है, वह भी अपनी आँखोंसे काम नहीं के सकता। वह अपनी आँखोंसे अपना आच्छेद पढ़ मार सकता है उससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। प्रसिद्ध चिन्तक एमर्सनने कहा है कि 'आँखें सभी भाषाएँ बोलती हैं। अमरीकी लेखक टकरमैन कहते हैं— 'आँखें ऐसी बलवृत्त-सक्ति और सन्चारिक ताब बोलती हैं कि शब्दोंके भी मात कर देती हैं। इन उक्तियोंकी सत्यताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आँखोंमें अद्भुत अभिव्यञ्जना-शक्ति होती है। आँखोंसे अवागम्य काम लेनेकी शर्चा केवल दिव्यी बातचीत नहीं है वह हमारे व्यावहारिक जीवनका सत्य है। अपने दैनिक व्यवहारमें हम केवल शब्दोंसे ही नहीं बोलते बूटिसे भी बोलते हैं। किन्तु रेडियो-वार्ताकार अपनी इन आँखोंका उपयोग नहीं कर सकता यदि वह करे भी तो उसके श्रोतायोंके लिए उनका कोई अर्थ नहीं है। उसका श्रोता उसकी आँखोंकी भाषा नहीं पढ़ सकता वह उससे दूर रहता है उसका चिन्तक अदृश्य।

आँखोंके सम्बन्धमें कही गयी बात मुखाकृति पर भी लागू है। मुखाकृतिसे भी विचारों और भावनाओंकी अभिव्यक्ति होती है। शेषविषय

ने किखा है— तुम्हारा मुख एक पुस्तक है, जिसमें लोम विविध बातें पढ़ सकते हैं। बाँधों और मुखावृत्ति बक्ताके सम्बन्धी अभिव्यञ्जना-शक्ति बढ़ती है। यही बात अन्य भाव-प्रियमार्गों एवं संकेतोंके सम्बन्धमें नहीं जा सकती है। हाथ और तंत्रिकाके द्वारासे भी हम भावामिव्यक्ति करते हैं कभी-कभी तो यह भावामिव्यक्ति इतनी सघन होती है कि शब्द उनके समस्त अत्यन्त दुर्बल प्राप्त होते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर द्वारा किये गये उदाहरणोंका सहारा लेकर कहा जा सकता है—‘बरखाके लच्छ हमारा करनेकी मनेजा यह कहना कि ‘कमरा छोड़ दो, कम अभिव्यञ्जक है। मत बोसो कहनेकी तुम्हामें होठोंपर पेंसिल रख देना अधिक शक्ति शाली है। ‘यहाँ जाओ’ की अपेक्षा हाथका संकेत अधिक मजबूत है। आदर्शके मानकी ओर भी शब्दावली इतनी स्पष्टताके साथ अभिव्यक्त नहीं कर सकती जितनी स्पष्टसे आँखोंका बोसना और यँहोंका उठाना कर सकता है। रेडियो-बार्ताकार अभिव्यक्तिके इन सघन साधनोंका उपयोग नहीं कर सकता। यह उच्चकी बहुत बड़ी सीमा है। उसे केवल अपने चम्बों और स्वयंसे काम लेना है और उँहँके द्वारा उच्च प्रभावोत्पादकता के अभावकी पूर्ण करनी है जो बक्ताको जोगिके सम्पूर्ण उपस्थित होकर भाषण देते समय उपलब्ध रहती है।

प्रत्यक्ष भाषणकी तुलनामें रेडियो-बार्ताकी एक और सीमा स्पष्ट ही दिखानो पड़ती है। बार्ताकार रेडियोके स्टूडियोमें माइक्रोफोनके सामने झकेला बैठा हुआ अपना भाषण पढ़ता है, उसके श्रोता उससे दूर अपने अपने घरोंमें उसकी बार्ता सुनते हैं। बार्ताकार अपने श्रोताओंकी प्रतिक्रिया से अनभिज्ञ रह जाता है, वह समझ नहीं पाता कि उसकी बार्ताका प्रभाव श्रोताओंपर कैसा पड़ रहा है। ‘गुड मिस्त्रिय’ पुस्तकके लेखक एस्टर एण्ड डारोपियन एकरका कथन है कि ‘माइक्रोफोनपर बोसना और अन्यत्र बोसनेमें व्यावहारिक अन्तर उन श्रोताओंका है, जिनकी सम्बोधित किया जाता है। उच्चतम श्रोताओंकी प्रतिक्रियाका प्रभाव बक्ता और उसकी भाषण

कसापर व्यवस्था ही पड़ती है। बड़ी-बड़ी समाजोंमें भाषण देनेवासे बक्ताओं-को इसका अनुभव सदा होता रहता है, और वे अपने सम्मुख बैठे श्रोताओं-को प्रतिक्षिप्ताओंके अनुकूल अपनी कलामें परिवर्तन करनेका प्रयत्न करते बसते हैं। आलोचक डॉक्टर मैथ्यूजने नाटकके सम्बन्धमें जो कहे हैं कि 'रेपर्सन समूहका काम है तथा नाटककारकी कृति उन बर्षकेसि भी प्रभावित होती रहती है, जिनके लिए नाटक प्रस्तुत किया जाता है वह प्रत्यत भाषणके लिए भी अक्षरशः सत्य है। रेडियोपर बोलनेवाला व्यक्ति बक्तृत्व-कलाकी इस विशेषताका उपयोग नहीं कर सकता। वह भाषकारमें अपने शब्दोंके तीर चलाता जाता है और समझ नहीं पाता कि वे कहीं लागते भी हैं या नहीं। रेडियो-वार्ताकारको इस सीमाका भी अध्ययन करना होता है।

वहीं एक बात यह कह दी जाय कि रेडियो-वार्ता प्रत्यत भाषणसे बिलकुल भिन्न है। यह समूहका कार्य नहीं है, व्यक्तिगत कार्य है—अधिकसे-अधिक दो-दो बार-बार व्यक्तिसे बनी योष्टिर्बन्धा कार्य है। इन दोनोंमें जो अन्व अन्तर है, उसकी चर्चा हम यथास्थान बादमें करने केकिन अभी जो कहा गया है उसके आधारपर यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि रेडियो-वार्ताकी 'रेडियो-भाषण' कहा जा सकता नहीं है। बहुत लोच रेडियोपर भाषण देनेकी बात किया करते हैं रेडियो-शास्त्रपर किसी एक हिन्दी पुस्तकमें भी इसे 'रेडियो-भाषण' कहा गया है। इस प्रकारका भ्रमोत्पादक नामकरण रेडियो-वार्ताके स्वरूपको समझनेमें बाधक होना। बीसा पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजीमें भी इसे 'रेडियो-टॉक' [Radio Talk] ही कहते हैं 'रेडियो-स्पीच' [Radio Speech] या अन्य कुछ नहीं।

अब फिर हम अपने मूल विषयपर आवें। एकदम भाषण तथा श्रोता की प्रतिक्षिप्ताके अन्वर्षमें यह आश्चर्य रहती है कि वार्ताकार कहीं संभवतः न ही जाय दो-बार मित्रोंकी बीचोंमें बातें करते समय उसमें जो मानवी-

यथा और संप्राप्तता रखती है, वह कहीं छुट न हो पाय। बट्टारखीं सतायीके प्रसिद्ध अंग्रेज वक्ता बेस्टरफील्डने कहा है—'तुम जिस व्यक्तिसे बातें कर रहे हो उसकी सच्ची माननाओंको जानना चाहते हो तो उसके चेहरेको देखो वह अपने सपनोंको सरलतासे नियंत्रित कर सकता है, मुँहपर अंकित माननाओंको नहीं। छोटी मोप्टीमें बातें करते समय किसी वक्ताकी बागीमें जो सजीबता रखती है उसका यही कारण है, वह प्रतिक्षण अपने मिश्रकी मुखाकृतिसे प्रभावित होता रहता है। रेडियो-वार्ताकार इस सजीबताको किस प्रकार बनाये रख सके यह उसके लिए एक समस्या है।

जब हम मुद्रित निबन्धकी तुलनामें रेडियो-वार्ताकी कुछ सीमाओंपर विचार करेंगे। कवि बायरनने कहा था—'कोई भी हाथ मेरे लिए जब बड़ीसे वह समय नहीं बख्ता सकता जो मुझर गया। रेडियो-वार्ताकी शोभा जो कोई वार्ता सुनकर यही कह सकता है। रेडियो-वार्ता भी अन्य रेडियो-कामकर्मोंकी तरह ही गुजरे हुए समयकी मूर्ति वापस नहीं जाती—वह बड़ीके एक-एक सेकेंडके साथ आगे बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती। फलतः यदि कुछ पंक्तियाँ शोभाकी समझमें नहीं जाती तो वह उन्हें बुझाए नहीं सुन सकता। इसके विपरीत यदि उसे मुद्रित निबन्धके कुछ वाक्योंके समझनेमें कठिनाई हो सकती है तो वह उन्हें एक ही बार नहीं दो बार पढ़नेको स्वतंत्र है। वह चाहे, तो पहले पढ़े हुए पृष्ठोंको फिरसे उलटकर देख सकता है। रेडियो वार्ताका शोभा इस बुद्धिसे विवश है। उदाहरणके लिए, यदि वह रेडियोपर ये पंक्तियाँ सुनता है—

मानव-जीवनमें बुद्ध-वेदना और कष्टका प्रश्न उससे पञ्चमन उसके भोग या उसमें सावकता खोजनेका प्रयास व्यक्तिके आत्म-साफल्य और उसकी सामाजिक उत्प्रेरणाका प्रश्न नैतिक मूल्योंके एक नये परिमाण खोजनेकी आवश्यकता जीवन-प्रक्रिया में आत्म-निवेश या आत्मोपलब्धि के बीचमें अन्तर्गत एक स्थायी भूमि खोज पानेका प्रयास कुछ सीमाओंकी अवलम्ब अग्रिम शब्दावलीका प्रयोग कर्त्तौ तैसीसे जूमते हुए बहकी एक स्थिर बुद्धि

बोजनेकी प्यास—ये सभी प्रश्न बड़े ही एंग्रेजिक ढंगसे बीनेन्सने 'मुनीता' में पठायें हैं । [साराग, २२ जनवरी १९४७]

बीर, इनकी समझबुझकी पूछत समझ नहीं पाता अथवा वाक्यकी सामाजिक बार फिरसे यह जानना चाहता है कि 'मुनीता' में कौन-कौन-से प्रश्न पठायें गये हैं । तो उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती । ये वक्तुर्मा उसी तरहसे नहीं सुनायी पढ़ेंगी । श्रोताकी यह विवशता भी रेडियो-वार्ता-कारकी एक बहुत बड़ी सीमा है ।

श्रोता किसी वार्ताको बुझाए नहीं मूल संकटा, यह तप्य रेडियो-वार्ता तथा मुद्रित निबन्धके एक बीर अन्तरकी धोर संकेत करता है । मुद्रित निबन्ध एक पूरा रचना होता है । वह अपने समग्र रूपमें पाठको उपलब्ध रहता है । पर रेडियोके श्रोताको कोई क्वि पुनः संघटित एवं सम्पूर्ण रूपमें स्वतः नहीं उपलब्ध होती अथवा इसके लिए स्वयं परिश्रम करना पड़ता है । अथवा मुने हुए एक-एक वाक्यको जोड़कर पूर्ण संघटित क्वि निर्मित करनी पड़ती है । वह एक-एक वाक्य सुनता हुआ क्रमशः भाग बढ़ता जाता है । वह वार्ताको मुद्रित निबन्धकी भांति एक बार ही समग्र रूपमें नहीं देख सकता अथवा कठिन शब्दोंको फिरसे बुझाए कर समझ सके । रेडियो वार्ताकी इस दुर्बलताको वार्ताकार बीसे दूर करे वह क्या करे कि वार्ताका सामूहिक प्रभाव श्रोतापर मुद्रित रचनाओंके किसी प्रकार कम न पड़े यह उसके लिए एक कठिन प्रश्न है ।

समग्र प्रभावकी जो बात अभी कही गयी उसका सम्बन्ध श्रोताकी स्मरण-शक्तिसे भी है । श्रोता किसी वार्तामें जाये सभी वाक्योंको स्मरण नहीं रख सकता । साहित्यका निश्चित रूप हवापी स्मरण-शक्तिको सहायक होता है पर इसके अर्थ्य रूपमें इस विधेयताका अभाव रहता है । रेडियो-वार्ताके सम्बन्धमें आलोचक टोमर मेनबेन्सका विचार है कि 'व्यक्तिगत वार्ता' अथवा रूपमें श्रोताके विचार-प्रवाहमें एक-एक वाक्य करके रहती है, और उसके बाद विराम होती हुई स्मृतिकी टेढ़ी-मेढ़ी राहोंमें प्रवेश करती है ।

कठोर वार्ताकी समाप्तिपर सामान्य श्रोताके लिए वास्तविक प्रारम्भ एवं विकासके विषयमें निश्चित कल्पना कुछ कह सकना कठिन होता है। रेडियो-श्रोताकी यह ऐसी मनोवैज्ञानिक अवसमता है, जिसपर विचार करना रेडियो वार्ताकारका कठम्य हो जाता है।

रेडियो-कार्यक्रम जिस वातावरणमें सुन जाते हैं वह भी वार्ताकारके लिए विचारणीय विषय है। हम अपने व्यावहारिक जीवनमें देखते हैं कि रेडियो-श्रवणका वातावरण साफ़ ही कभी और किसीके महाँ विस्फुटक प्राप्त रहता है। ऐसे कम हो खोम मिलेंगे जो कमरेके दरवाजे बन्द कर यांत्रिक साध कार्यक्रम सुनते हैं। होता अधिकतर यह है कि लोग कार्यक्रम को सुनते रहते हैं, आपसमें कभी-कभी बातें भी करते जाते हैं, दूसरी तरफ़ बच्चोंका शोरगुल भी होता रहता है बीच-बीचमें टेलीफ़ोनकी घण्टी भी बजती रहती है कमरेमें हजर-उजरकी हूँसी आवाजें भी आती रहती हैं। इसके विपरीत यदि हमें युक्ति साहित्य पढ़ना होता है, तो एकान्तमें यांत्रिक-पूर्वक पढ़नेका प्रयत्न करते हैं। पढ़नेका काम लोगोंकी भीड़ और तरङ्ग तरङ्गकी हलचलमें नहीं होता। रेडियो-वार्ताकार रेडियो-श्रवणके इस बाधक वातावरणका किस प्रकार सामना करे, यह भी एक समस्या है।

रेडियो-वार्ताकारके सम्मुख इतनी घाटी कठिनाइयाँ हैं उसके पास केवल भाषा है अनिमित्तके दूसरे वृत्त साधन नहीं हैं, श्रोताके पास केवल श्रवण है दृष्टि नहीं है और ये श्रवण भी प्रसारित रचनाओंको केवल एक ही धार सुन सकते हैं, श्रोताकी स्मरण-शक्ति भी वार्ताकी सम्पूर्ण स्मरण रखनेमें अक्षम है, और श्रोता जिस वातावरणमें कार्यक्रम सुनता है वह भी प्रसंगीय नहीं कहा जा सकता। वार्ताकारको इन सीमाओंको ध्यान में रखना है। उसकी सहायता करनेवाले साधन बढ़े सीमित हैं भाषाकी शक्ति मनोविज्ञानसे उपलब्ध ज्ञान सेखन-शौचल ध्वनि और प्रसारण-शक्ति। इन सबका वह किस प्रकार अधिकधिक संकल्पनाके साध उपयोग कर सकता है इसका विवेचन हम अगले अध्यायमें करेंगे।

नाये ही जाते हैं। इसलिये भी भाष्यकारानुसार इन संकेतोंसे काम केते हैं। किसी अन्य भाषा-भाषीसे मिलनपर प्रायः अपूर्ण उच्चारण अथवा अपूर्ण शब्द-साधारणकी पूर्ति करनेके लिये हमें संकेतोंका प्रयोग करना पड़ता है। बहुरे और गुंघोते संज्ञाप करनेमें उगकी संकेतमय भाषाका ज्ञान आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार मुख-विकृति भी भाषाका दूसरा अंग मानी जा सकती है। गर्भ, वृणा क्रोध अथवा आदिके भावोंके प्रकाशनमें मुख-विकृति-का बड़ा सहयोग रहता है। एक श्लेषपूर्व वाक्यके साथ ही बहुरेकी आँखोंमें भी श्लेष देख पड़ना साधारण बात है। बातचीतमें मुखकी विकृति अथवा भाव-संज्ञीका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है कि अन्वकारमें भी हम किसीके शब्दोंको सुनकर उसके मुखकी भाव-संज्ञीकी कल्पना कर केते हैं। ऐसी अवस्थाओंमें प्रायः कहनेका अर्थ अर्थात् आवाज [tone of voice] हमारी सहायता करती है। बिना श्लेष भी हम दूसरेकी 'करी आवाज' 'भरी आवाज' अथवा 'भरमि' और 'टूटे स्वरसे उठके वाक्योंका मित्य मित्य अर्थ समझावा करते हैं। इसीसे कहुवा आवाज [tone] अथवा स्वर-विकार भी भाषाका एक अंग माना जाता है। इसे वाक्य-स्वर भी कह सकते हैं। इसी प्रकार स्वर [अर्थात् पीठालयक स्वरबाध], वक्ष-अयोग और उच्चारणका वेव [अर्थात् प्रवाह] भी भाषाके विशेष अंग होते हैं।—कहुनेकी आवश्यकता नहीं कि केवल-कथा और मुद्रण-जगत्के आविष्कारने भाषाको उसके इन सभी अंगोंसे विच्छिन्न कर दिया है, जिसके सम्बन्धन भाषा अपनेको अक्षय्य अनुभव करने लगी है। जो भाषा जितनी ही पुरानी है और परम्परागत प्रयोगोंके कारण जितनी कल्प-सहित जितनी ही पिस गयी है, उसे उतना ही अधिक अपनी शक्ति-श्रीमताका अनुभव होता है, और वह उतने दूर करनेके लिये अपनी पीसीका संस्कार करती विद्यायी पड़ती है। अंग्रेजीके सम्बन्धमें कवि एवं नाटककार कुई पैकनील का विचार है कि 'अंग्रेजी जितका साहित्य इतना पुराना है, और जिसकी समसामयिक पीसी प्रयोगोंसे इतनी अरक्षित हो गयी है, जो आज साधारणक

केहनके लिए उपचार-बद्धता—सीधे-साधे बक्तव्यों और जिसे-पिटे बिजोंको टेढ़े ढंगसे बहनाकी सीधी—पर निर्भर करना पड़ रहा है । उगक अनुसार मूर्च्छित पृष्ठपर ऐसा करनेके लिए सतत कौशल-श्रमधनकी अपेक्षा है पर उच्चरित शब्दोंके द्वारा जिसे सहज ही किया जा सकता है ।

इसी प्रसंगमें 'अज्ञेय' की ये पंक्तियाँ भी उद्धृत की जा सकती हैं—
 'भाषाकी अपर्याप्त वाक्य विराम-चिह्नसि अंकों और सीधी-ठिगड़ी ककोरों से छोटे-बड़े टाइटिसि सीधे या उल्टे बलरोंसे सोपों और स्वागोंके नामों-से, बबूरे वाक्योंसे—समी प्रकारके इतर साधनोंसे कवि उद्योग करने तथा कि अपनी उलझी हुई संबन्धनाकी मुद्रिको पाठकों तक बलुष्क पहुँचा सके । इसके उदाहरण-स्वरूप रूसी-बिबेयी अत्याधुनिक कविताके अनेकानेक अंश उद्धृत किये जा सकते हैं । हिन्दीकी एक कविताका अंश प्रस्तुत है—

तै—

—ने

[अर्थात् हम—ने]

इन्हें अपने अरिषके परसें धारण किया
 जाने या बहुत कुछ प्रसंगिं धनवाने ही
 इनका संभारण

मनसा

बाबा

कर्मणा

सम्नाविष हुषा ।

धोर

चिर जसी तच्छ,

घात,

सहज,

प्रतिष्पतिक्यों,

रेडियो-बार्ता-शास्त्र

इंगितों,
 आबरवों,
 कर्मों,
 के साम्यम
 इनके पुरुषको
 लक्ष्य प्रवर्तित किया ।
 [परस्फुटके वर्णिका प्रयोग
 मेरा—[+ रा]

अर्थात्
 हमारा—[+ रा]
 लक्ष्य नहीं था]

[क्वारकी सौम्य संप्रहृष्टे]

बच्चे भी ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें सेखन-सैखी-की तबीयतके साथ अमत्कार उत्पन्न करनका प्रयत्न किया जाता है। अपरम्पर [वैसासिक साहित्य संकलन] में प्रकाशित 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुरुकुलम । शीपक कहानीये कुछ परिवर्तन सम्पुष्ट हैं— 'बारोमा साहबकी डेढ़ हाथ लम्बी चोरबत्तीकी रोशनी कितनी तेज होती है हिरामम जानता है। एक अच्युतक बारमी जन्मा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाय बाँबोंपर, तो ! रोशनीके साथ उड़कती हुई जाबाब—ऐ-य ! गाड़ी रोको ॥ साथे नोली मार देंगे !—

बीछीं गाड़ी एक साथ कचकचाकर रुक मयीं । हिरामनने पहले ही कहा था—यह बीस दिवावेवा । बारोमा साहब उसकी गाड़ीमें बुकके हुए मुनीमजीपर रोशनी डालकर पिछाची हँसी हँसे—हा-हा-हा । मुँड़ीमजी ई-ई-ई । ही-ही-ही । 'ऐ-य साता गाड़ीबान मुँह नवा देबता है है ऐ-ए ए ? कम्बल हटाओ इस बोरेके मुँहपरसे । हाथकी छोटी स्पंठीसे मुनीमजीने पेटमें खोंबा मारते हुए कहा था—इस बोरेको ! स-स्ताता ॥

इन उदाहरणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि लेखक किस प्रकार अपनी ध्वनियोंसे चित्रित भाषाकी असमता मिटानेके लिए प्रयत्नशील है। यह मुख-यन्त्र और मेखन-कलाका प्रमाण है। इन्होंने लेखकों और पाठकोंको दूसरे प्रकारसे भी प्रभावित किया है। यहाँ हम कुछ और प्रमाणोंपर विचार करेंगे।

एकमें चित्र-निर्माणकी शक्ति होती है। जब कोई शब्द उच्चारित किया जाता है, तब श्रोताके मनमें उच्चारित ध्वनियोंकी प्रतिक्रिया होती है और मानस-चित्र उभर आते हैं। धर्मोंके सिद्धित रूपमें यह शक्ति नहीं होती। फलतः मुख-यन्त्रने लेखकों और पाठकोंका ध्यान भाषित शब्दोंकी प्रतिक्रियासे हटा दिया है। सोमनाथ चित्रके एकमें सिद्धित शब्दोंने लेखकोंमें भाषाको वाक्य और अनुच्छेदके रूपमें सोचनेकी आदतको जन्म दिया। इसने उच्चारित शब्दोंकी प्रतिक्रियाओं चित्रों और शब्दोंपरसे लेखक और पाठकका ध्यान हटा दिया। दूसरी बात यह भी ध्यान देनेकी है कि एकमें केवल शब्द ही नहीं होता ध्वनि भी होती है। ध्वनियोंके अन्तर्गमने भी जानना होता है। कवित्तमें तो इस नाद-सौन्दर्यका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लेकिन एकके सिद्धित रूपके मीन पाठ द्वारा इस जाननेकी उप-लब्धि नहीं हो सकती। इसका प्रमाण श्रोताओंकी काम्यानन्द-सहृणकी शक्ति पर पड़ा है। बीसा कि प्रा० कुचने कहा है 'मुख-कलाने हमारी शक्ति तिरक दृष्टि मन्त्र कर दी है। कई वैज्ञानिकने भी सत्य ही कहा है कि हम ऐसे युगमें हैं, जितमें हमारे कुछ कवि भी इस प्रकार लिखते हैं जैसे वे बहरे और सुने हैं। नाद-सौन्दर्यकी यह बात कलक काम्यके लिए हो सत्य नहीं है, गद्यकी समारम्भतामें भी सौन्दर्य होता है जिसे सुनकर जानना प्राप्त किया जा सकता है।

इन्होंनेकी आवश्यक्ता नहीं कि मुख-यन्त्र द्वारा अत्यन्त शब्दोंकी मौलिक शक्तियोंको रेडियो फिरसे वापस ले सकता है। रेडियोने भाषाकी स्वर विचार, स्वर, बल और प्रवाह इन सभी अंगोंसे पुन सम्पन्न कर दिया

है। इससे हम शक्ति भी है कि हम भाषित शब्दोंसे श्रोताओंके मनमें अनेक-
 सित मानस-विशोक निर्माण कर सकें अनेकित प्रतिक्रियाएँ बना सकें
 शब्दोंके सुने हुए फुलमें फिर रंग और पन्ना सा सकें अर्थात् शक्ति शब्दोंको
 पूर्णतः प्राणबन्ध बना सकें।

भाषित शब्दोंके पक्षमें कहे गये तथ्योंसे बहुत सामान्य बात कि निश्चित
 और मुद्रित शब्दोंका कोई मूल्य ही नहीं है। इन होनेसे हमारी सम्पत्तके
 विकासमें बहुत बड़ा काम किया है। सैन्य-कलाके आविष्कारने मानव
 मानवके बीचकी दूरी मिटायी थी एक स्वानका व्यक्ति अपनेसे कोसों दूर
 रहनेवासे व्यक्तिसे विचार-विमर्श करनेमें समर्थ हो सका। इस प्रकार
 मुद्रण-यन्त्रके आविष्कारने देश-काण्डकी दूरी मिटाकर ज्ञानका प्रसार किया
 वाकिर्वास और सेक्सपियर-जैसे साहित्यकारोंकी कृतियाँ सबके लिए सुलभ
 हो गयीं। लेकिन इन सुविधाओंके बावजूद सैन्य और मुद्रणमें भाषित
 शब्दोंकी शक्ति छीनी इसे बलीकार नहीं किया जा सकता। रेडियोमें
 बिरोधता यह है कि इसने सैन्य और मुद्रण-कलाओंकी तरह स्वामोंकी दूरी
 भी मिटायी है साथ ही शब्दोंकी खोयी हुई शक्ति भी वापस भी है। यदि
 व्यक्तिका इतना विभिन्न माध्यम मनुष्यको पहली बार मिला है, जिसमें
 प्रत्यक्ष भाषणकी सामूहिकता भी है और स्वामोंकी दूरी मिटानेकी सैन्य
 कला-जैसी क्षमता भी है। ज्ञानका विचारक और साहित्यकार एक स्वान
 पर बैठे हुए दूर-दूर रहनेवाले अक्षय लोगोंने एक ही साथ बातें कर
 सकता है। सामूहिक प्रेषणीयताका इतना उद्यत साधन दूसरा नहीं है
 जिसके माध्यमसे एक बार्ताकार दूरस्थ व्यक्तिसे प्रत्यक्ष रूपसे अपनी
 बातें कह सके। बार्ताकारकी यह क्षमता भाषित शब्दोंकी शक्तिके बालपर
 निर्भर है। इस शक्तिका किस प्रकार उपयोग किया जाय यह हमारे जगतके
 अग्याओंका विशेष विषय होगा।

रेडियो-वार्ता और श्रोताकी मानसिक दृष्टि

रेडियो सुनता हूँ ।

हैंसके बापसे

स्वर और सम्बन्ध

रंग-बिरंगे फूल चुनता हूँ ।

सबसे अधिक सुनते समय थोड़ा कम स्वरों और ध्वनिके रंग-बिरंगे फूल चुनते-कम अनुभव करते सकते हैं। सभी रेडियो-कार्यक्रमोंकी सार्थकता सिद्ध होती है। कल्पना से सुननेमें विचार ही गमी निरपेक्ष ध्वनियोंकी तरह है। शब्दोंके फूल थोड़ाकी मानसिक बाँधों द्वारा ही देखे जा सकते हैं, और ध्वनियोंके द्वारा चुने भी जा सकते हैं। फलतः रेडियो-कार्यक्रमोंके प्रस्तुतकर्ताका ध्यान श्रोताकी मानसिक दृष्टिपर बराबर ही रहना चाहिए। रेडियो-केंद्रोंकी जाहे बहुत नाटककार हो, कहानीकार हो, वार्ताकार हो वगैरह स्वरूप रखना है कि वह ध्वनिके लिए सिद्ध रहा है, उसे प्रत्येक क्षण अपने ध्वनियोंकी विश्व-निर्माण-शक्तिका उपयोग करना है। रेडियो-वार्ताकारमें तो यह विशेषता निश्चित रूपसे होनी चाहिए। रेडियो-वार्ताकारके सम्बन्धमें प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर वीरिण बर्ट कहते हैं— 'जबकी वार्ता सिद्धते समय प्रसारण-कर्ताके अपने श्रोताओंकी मानसिक दृष्टिको ध्यानमें रखना चाहिए, जो कुछ भी पाठ मात्र हो उसे छोड़ देना चाहिए, और प्रत्येक वाक्यको एक विश्व निर्मित करना चाहिए।'

बी० बी० सी० के पहले शीफ इन्जीनियर पी० पी० एकरस्मे अपनी पुस्तक 'दि पावर बिहाइण्ड दि माइक्रोफोन' में बड़े साठ पन्नोंमें कहते हैं कि 'मनको उदात्तवाले ऐसे पद-पाठ बहुत कम होने चाहिए [रेडियोवर] जो परपर साबास किये-बीते मालूम हों और ऐसे कुछक वार्ताकारोंको अधिक संख्यामें खाना चाहिए, जो पटनाओं और विचारोंके स्पष्ट सम्बन्ध निमित्त करना जानते हों। रेडियोके प्रसिद्ध प्रसारककर्ता किमोनेल गैमकिन रेडियोवर प्रभावशाली ध्वनि-चित्र [Sound Picture] चाहते हैं और बतलाते हैं कि रेडियो द्वारा प्रस्तुत ध्वनि-चित्र चित्रशास्त्रके चित्रोंकी तरह पठिहीन नहीं होते बल्कि बड़े पठिशील होते हैं थोटाके सामने एक जपके लिए आते हैं और ठिठर दिया हो जाते हैं थोटा उन्हें बुझाए नहीं देख सकता कबत उन्हें बिलगुल स्पष्ट होना चाहिए। रेडियो-वार्ताके लिए विचारमकता अनिवार्य है इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत यह है कि पम्पों द्वारा किस प्रकार चित्र-निर्माण किया जाय ? बीनकी एक बहानवर्षमें कहा गया है कि एक चित्र दस हजार पदोंके बराबर होता है। यह उक्ति बिलगुल सरय है लेकिन दस हजार नहीं बल्कि कुछ दस-पिने पम्पोंसे ही चित्र बीसे करें यह एक कठिन कार्य है। इसके लिए कल्पना-शक्तिकी अपेक्षा है। बिना कल्पनाका सह्यप किये पम्पोंकी धनितका अपेक्षित उपयोग नहीं हो सकता। किमोनेल गैमकिन तो कहते हैं कि बिना कलाकार हुए कोई भी इत कल्पनाका उपयोग नहीं कर सकता। कहनेको आवश्यकता नहीं कि रेडियो-वार्ताकारको भी कलाकार बनना पड़ेया बनना क्या पड़ेया, कलाकार तो यह है ही। बीते ही यह कवियों कहानीकारों और नाटककारोंकी तरह अपनी वार्ता लिखनेके लिए इच्छम हाथमें सटाता है, और उसक बाद अभिनेताओंकी तरह माइक्रोफोन के सामने स्वयं अपना अभिनय करनेके लिए [बुझाएँका नहीं] जाता है, यह कलाकारके परपर प्रतिष्ठित हो जाता है। यह सही है कि वह वैज्ञानिक है, डाक्टर है, बकील है, राजनीतिक या साहित्यिक विचारक है, वर्षशास्त्री

है यद्यपि किसी दूसरे विषयका विशेषज्ञ है, पर जहाँ बार्ता-प्रेक्षण और प्रसारणका प्रश्न आता है, वह कलाकार है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके सामने समस्या तो यह है कि वह अपने कलाकारके वीर्य की रक्षा किस प्रकार करे, किस प्रकार कल्पना और शब्दोंकी शक्तिसे काम ले और किस प्रकार अपने जोताबोंकी मानसिक दृष्टिके सामने यथोचित सामग्री उपस्थित कर सके ?

शब्दोंकी शक्ति अपरिमित है यह पहले कहा जा चुका है। शब्दोंसे विश्व भी निर्मित हो सकता है, स्व-रंगकी छाँकी भी प्रस्तुत की जा सकती है कठिनी ध्वनिना भी हो सकती है। इसके पहले कि हम प्रसारण बार्ताबोंसे इनके कुछ उदाहरण लें यह उचित लगता है कि प्राचीन काव्यके उदाहरणों से शब्दोंकी विशालतम शक्तिका परिचय दिया जाय। प्राचीन काव्यमें यह दृश्य तत्त्व बहुत अधिक वा मुख-मन्त्रके आभिजात तथा बोधिकताके विकासके साथ-साथ इसका ह्रास हो गया है। विश्वयुगके कुछ उदाहरण काव्यशास्त्री दृष्टियोगे से उनके कुछ अंशोंके अनुवादके द्वारा दिये जा रहे हैं।

माकविवाग्निवित्र की मासविकाका यह रूप-विश्व है—'बड़ी-बड़ी शीशें काशिमाम् शरदके जलमा शैवा मुख कम्पोपर घोड़ी मुकी हुई मुजाएँ, पानत स्तन मुट्टी भरकी कटि पुपुळ जाँबें और घोड़ी-घोड़ी मुकी हुई पैरोंकी उँवकियाँ।

'कुमारसम्भव' की पार्वतीके इस चित्रमें रोंगोंकी स्पष्ट रेखा जा सकता है—'जमकके समान जिनकी शीशें हैं सिरसके फूलसे भी कोमल जिनकी मुजाएँ हैं जिनके कास-कास बचरोंपर मुसकानकी उरम्भसता ऐसी समती है, जैसे कास कोंपलमें कोई पजसा फूल रखा हो या स्वच्छ भुँके शीशमें मोठी बड़ा हुआ हो।

महाविष्णुके आभयका यह चित्र देखिए—'कहीं कुलोंके नीचे कुम्पोंके बोंसबोंसे घिरे हुए ठिन्नीके डाले बिलारे पड़े हैं कहीं इपर-उपर

पड़े हुए बिजने पत्थर बरसा रहे हैं कि इनपर हिमोटके फल कूटे गये हैं कहीं निर्मीक बड़े हरिन इस विश्वासके साथ रपका घन्ट मुन रहे हैं कि माथममे इन्हें कोई छेड़ेगा नहीं कहीं नबी-तालाबोंपर आने-जागकी राहमें मुनियोंके बल्कलसि टपके हुए बालकी रेखाएँ बनी हुई हैं ।

बतिके घन्ट-बिजके लिए बेगसे बौड़ते हुए रपका यह बिज बरसनीव है—'घबमुच इन बरबोंने तो सूर्य और चन्द्रके बरबोंको भी बौड़में पछाइ दिया है क्योंकि जो वस्तु दूरसे पठती दिखायी देती थी वह जल्दी ही मोटी हो जाती है जो बीचसे कटी जान पड़ती थी वह सट ऐसी जान पड़न लगती है मानो उसे किसीने थोड़ दिया हो और जो स्वभावतः टेढ़ी वस्तुएँ हैं वे आँखको सीधी-सी दिखायी देने लगती हैं । रप इतने बेगसे बौड़ रहा है कि कोई वस्तु न दूर रह पाती है न समीप ही'—[आकाशमें तीव्र बेगसे बौड़ते रपका बिज] यह रप इतने बेगसे बौड़ रहा है कि इसकी रफ़फ़से बने बादल विद्य-विद्यकर कुछ बन गये हैं । इतके पहिले भी इतने बेगसे घूम रहे हैं कि समता है मानो पहिलेके अरुके बीचमें और भी बहुत-सी बरें बनते पले जा रहे हैं । अरुके सिरपर चौरियाँ एक ठरह लड़ी हो गयी हैं कि लगता है ये बिजमें बिजो हुई हों और बीचसे चलनके कारण जो पवन उठता है उसकी झोंकसे लम्बीका कपड़ा अपने बाहुएँ छोड़के और पन्नाके इन्डेके बीचमें सीधा फँस गया है तनिक भी झिंकटा-झुंकटा नहीं ।

इस प्रकारके घन्ट-बिजोंका व्यवहार रेडियो-वार्ताकी आकर्षक और प्रभावोत्पादक बना सकता है, इसमें शक्य नहीं । प्राकृतिक दूरियों स्वार्थों देतीं व्यक्तियों या भा-विचारों आदिसे सम्बन्धित वार्ताओंमें बिजोंका व्यवहार किया जा सकता है । उदाहरणके लिए, 'यह राजस्थान है तीर्थक वार्ताका यह अंग उद्भूत है

'यह राजस्थान है, मूरमा देण । नाम सेवे ही इतिहास जाँत्रोंपर बड़ जाता है । अफीकाके रेगिस्तान तहाराका विस्तार, बितनी ही बीहड़ भूमि

जाने ही बीड़ड़ जायमी । मारमी कि छरीकाप पियला तो पानी जमा
तो बच ।

×

×

×

छरहरा डीस-डोक नुकीली माक डेबा माया बिस्मसे चिपकी कच्छा-
नुमा बोतो, छटो मिरजई कसी पयड़ी । कमरसे छटकठी तलवार, मुट्टीमें
कसा माका । बोनों ओर संभारी बाड़ी बड़ी मूर्छे लाबेका रंग ।—बाँका
राजपूत कि देखे तो केहरी दुम बचा से कि चले ती गजपज यह छोड़ दे ।

छरही कावा सुबरा रय साँबेमें डके बंग । छातीपर कसी चोली
कमरसे फेला बाँबरा । मायेपर प्रकाशपुंज शोरला छिरपर बाँचक मुको
तो बाँचक भीप आये छेड़ो तो छिहनी गरज उठे । उमा-सी पावन नेस
रिया राजपूतकी आनकी रहस्य—राजपूतनी ।

[आकाशवाणी प्रसारिका अर्ध-कूल १९३६]

ये चित्र अत्यन्त ही आकर्षक कहे जायेंगे । पर इनके विपरीत बार्ताओं-
में चित्रोंके लिए अथवा चित्रोंके लिए भी साधारणतः ये बार्ताकारों द्वारा नहीं
प्रस्तुत किये जाते । उदाहरणार्थ बररीनाथ चौपक बार्तामें बार्ताकार
कहता है—

‘यद्यपि बलमान मन्दिर तीर्थकी प्रसिद्धिके अनुकूल नहीं हैं और न
मारुके अन्य मन्दिरोंकी भाँति इसमें भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकलाका
वास्तविक रूप प्रकट हुआ है, तो भी इसका प्रवेश द्वार बहुत मध्य है ।

[रेडियो-संग्रह अक्टूबर-दिसम्बर १९३३]

इस ‘मय्य’ शब्दके कहे देने मायसे भोलाके मनमें प्रवेश-द्वारा काँसा
चित्र जायेगा ? ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण है । यह संग्रह ‘धीर्लोका देव
कनाडा बार्ताका है—

दुरेंटोका अजायबपर हमारे अचकके देखे हुए बड़े अजायबघरोंमें एक
पा और उसके कुछ संग्रह तो ऐसे वे जैसे हमने अचक कहींके अजायब-
घरमें न देखे थे । दुरेंटोका यह उपलब्ध बौटारिया म्यूजियम यूनिवर्सिटी

एनेम्पर बना हुआ है। इस एक अत्रायवधरमें वास्तवमें चार अत्रायवधर हैं। लम्बतको छोड़ यह अत्रायवधर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलमें सबसे बड़ा है और अपने संग्रहालयके लिए अत्यन्त विख्यात है। अत्रायवधरके चार भाग इस प्रकार हैं—पुरुषात्सव जनित्र घासत्र सुसर्भ घासत्र और प्राणिघासत्र। इस अत्रायवधरसे जीवनकी बृहत्ताका आभास दिखता है।

[प्रसारिका बुलाई दिसम्बर १९३५]

उद्बुध अंशसे थोडाके मतमें अत्रायवधरके सम्बन्धमें क्या चारणा बनेगी? इससे क्या यह समझ पाता है कि अत्रायवधर कितना बड़ा है उसमें कौन-कौन-सी ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हैं जो और कहीं नहीं हैं? बार्ताकारने सभी बड़ी भुँवली बातें कही हैं उसने चर्चोंकी विधात्मक चर्चितका उपयोग नहीं किया है। सीरिस बर्टका जो विचार पहले दिया जा चुका है कि जो भाव मात्र हो उसे छोड़ देना चाहिए और प्रत्येक वाक्यको एक चित्र निर्मित करना चाहिए, यह ऐसे ही प्रसंगोंके लिए। बार्ताकारोंमें कुछ भी भुँवला नहीं होना चाहिए। 'प्रोडक्शन एण्ड डाइरेक्शन ऑफ रेडियो प्रोग्राम्स' के लेखक जोन एच० कार्लाइल कहते हैं—'दर्शकोंको निश्चित और प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित कीजिए। प्रसिद्ध लेखक एवं बक्ता जेस कार्लोनी भी यही बात कहते हैं कि बृष्टिके लिए प्रस्तुत सामग्रीको विरुद्ध स्पष्ट और निश्चित रखिए।

दर्शकों द्वारा निर्मित चित्रोंके सम्बन्धमें यह अक्सर याद रखना है कि चर्च कितनी भी वस्तु या बुद्धयुक्त हूबहु चित्र नहीं अंकित कर सकते वे केवल चित्रोंकी व्यवस्था कर सकते हैं। कुछ दर्शकों या कुछ वाक्यों द्वारा एते उचित मत दिये जा सकते हैं जिनसे थोडा अपने मतमें स्वयं ही चित्र निर्मित कर ले। चर्च-संकेतोंकी विशेषता केवल इसी बातमें है कि वे थोडा-थोडा कल्पनापक्षिको उद्बुध कर दें जिससे यह मानव-चित्रोंका निर्माण कर सके। रेडियोको नरिचोंकी कक्षा बन्ना चाहता है। इसकी विशेषता इसकी व्यवस्थामें ही है अविधानमें नहीं। साहित्यकी सबसे बड़ी शक्ति व्यवस्था ही

मानी जाती है। इस दृष्टिसे रेडियो विचारों और भावोंके प्रेषणका सबसे अधिक माध्यम है। इसीलिए टेलेविजनकी तुलनामें रेडियोको अनुसूची प्रसारणकर्तव्यों द्वारा अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। टेलेविजनके पटपर साहित्यमें अंकित दृश्योंके हूबहू चित्रणका प्रयत्न रहता है। 'दि टाइम्स' पत्रके रेडियो-समीक्षकने एक बार लिखा था— फिन्नी चित्रपटोंकी यथा उचिततासे स्पेन्सरके काव्यकी चित्रमयताको हास्यास्पद बना दिया। पट्टीका उत्कृष्ट है, इसलिए हमछोगोंको अच्छी बजानेवालोंको देखना ही चाहिए, रोयनीका उत्कृष्ट है इसलिए रोयनीवालोंको सजना ही चाहिए।—यह कथनका निवेदन है। कवि सुई मैकनोस कहते हैं— कवि जब कोयलके विषयमें कहता है कि वही एक मात्र ऐसा पक्षी है जिसके स्वरमें इतनी सजगता है कि उसकी भी प्रतिच्छाया होती है, तब हम किसी कोयलको नहीं देखना चाहते। मैं समझता हूँ हमछोग कुछ भी नहीं देखना चाहते काव्यात्मक चित्रको अपना रमरम स्वयं अपने पास होना चाहिए। इन सभी बातोंसे यह निष्कर्ष सरलतासे निकाला जा सकता है कि सर्वोत्कृष्ट चित्रोंकी व्यवस्था कर देना ही पर्याप्त है।

मोताओंकी मानसिक दृष्टिकी तृप्तिके लिए चित्रारमकताके अतिरिक्त भी अनेक साधन हैं। उनमें एक यह है कि अपने विचारको सदाहरणोंके द्वारा व्यक्त किया जाय। गम्भीरसे-गम्भीर विचार भी सदाहरणोंके द्वारा आकर्षक एवं सरल रूपमें उपस्थित किया जा सकता है। अनर समाचार कुछ देर तक विचार-ही-विचार उपस्थित किये जायें तो मोताओंको समझनेमें भी कठिनाई होगी और उनका मन भी ऊन चामेगा। रेडियोके बहुस्य मोताओंके लिए तो यह बात विशेष रूपसे सही है। इसीलिए जान एस० कार्काइस रेडियो-वेबकेसे कहते हैं कि सदाहरणोंके व्यवहारमें सावधान रहिए। अन-सामान्यसे सम्पर्क रखनेवाले विचारक एवं बक्ता सदाहरणोंके महत्त्वको अच्छी तरह जानते हैं। आचार्य विनोबाके 'गीता-प्रवचन'में देखा जा सकता है कि बृहस्पति द्वारा किस प्रकार मोताके गम्भीर दर्शनको भी

सहज बोधव्यम बना दिया गया है। उसीसे एक छोटा-सा बंध बद्धपूत है। सहज कर्मको ही अकर्म कहते हैं।—कर्मकी सहजताको समझनेके लिए हम अपने परिषयका एक उदाहरण लें। छोटा बच्चा पहले बच्चन पीछे बड़ी बचन सहज हो जाता है। वह बचन भी रहता है और बात-बात मानके सम्बन्धमें है। हम छोटे बच्चेका सम्प्राधान्य करते हैं, मानो बाता कोई बड़ा काम हो। परन्तु पीछे बड़ी खाला एक सहज कर्म हो जाता है। मनुष्य जब ठहरना सीखता है तो कितना कह होता है। पहले दम भर जाता है पर बादमें तो उल्टे जब दूसरी मेहनतसे एक बाता है तो कहता है कि बच्चे जब ठहर आये तो फलन निकल बाब। जब वह ठहरा कहकर नहीं मान्य होता। खरीर यों ही सहज भावसे पालीपर तैरता है। अस्मिन् होना मनका बर्म है। मन जब कर्ममें व्यस्त रहता है, तो मन माधुम होता है परन्तु कर्म जब सहज होने लगते हैं तो फिर उनका बोध नहीं मान्य होता। कर्म मानो अकर्म हो जाता है। कर्म मान्यम हो जाता है।

एक उदाहरण एक प्रसारित बातसे है कि उदाहरणके व्यवहारसे वार्ता किस प्रकार रोचक हो जाती है। वार्ताका नाम है 'ऐन मीठेपर बुद्धि बह, वागुटी बह, प्रतिभा बह जो ऐन मीठेपर राह बढाये, पन्ध मुजाये, कर्म बढाये। यों तो बुद्धि उस बात मानबर्म भी होती है, जो पीठपर माटी बोझ धिये भीलें मुख्यये कमल कटकामे लकीर पकड़े बोधी पाठक बीसे-बीसे पहुँच ही जाता है।

यै मानता है बीसी बुद्धि बीसी वागुटी बीसी प्रतिभा सबको नहीं निरुत्ती। वह जो मानता है एक कम्बी साधनाके बाद ही बुद्धिमें बीसा बमरकाट, वागुटीमें बीसा पैनापन और प्रतिभामें बीसे पंख कम नासे

है, जब बादमी एक उड़ानमें पहाड़की पार कर लेता है एक छत्तीसमें समुद्र साँव लेता है एक सरपटमें महमूमिको पीछे छोड़ जाता है, जब कि दूसरे लौम साँव रोक्कर वह बैलमेको उत्सुक होते हैं कि अब वह मघ-महा या बका-बूबा ।

एक ठाड़ा बराहरण लीजिए । पिछ्ठी सड़ाई पुक हुई । हितकरने यूरोपमें कुहुराम मचा दिया । वह बेसपर-बेस विक्रय करता गया ऐसा क्या साध संसार तानासाहीके क्रूर पंजेमें आकर खड़ेया । भारतमें बनीब इस्लाम थी नाबोबादके समी दुपमान थे किन्तु उसके खिलाफ ब्रिजोन्टी मदद भी किस तरह बी बा सफती थी जो हमें मुछाम बनाकर रखे हुए थे । हमारे नेताओंकी दिमागी परेषानी देखने लायक थी आसकर उन नेताओंकी बिनका दिमाग ज्ञान-विज्ञानसे बचासक भरा हुआ था । उन्हें एक तरह बाई बीबती थी दूसरी तरह बनिकुण्ड बनकता नजर जाता था । किसीको कुछ नहीं मूमता था किन्तु सेनापति तो वह, जो कल्पकारमें भी प्रकयस हुई निकाले । ऐन मौकेपर उसके मुँहसे नि-मृत हुआ—‘भारत छोड़ो । और, क्या वह सब नहीं कि यदि उसके मुँहसे यह बाणी न फूटती तो हम आज भी गुलाब होते ?

इतिहासकी वह अमर पटना किसे याद नहीं है ? नेपोलियनकी सेना बिजयाभियानको निकली है, सामने आर्य्य बड़ा है । सेनाकी सेनानायकों-की बुद्धि बककरमें है, अब क्या हो ? ‘बड़ो आर्य्य पार करो । ‘यह तो असम्भव है । ‘असम्भव सब बुद्धिकोंके कोपमें होता है । और, वह बेबिग, वह छोटा-ठा बुद्धसवार अपने बोड़ेको धावे फेंकता है और भीजिए, आर्य्य पार ।

हमें यह बटना तो याद रह जाती है, किन्तु हम भूल जाते हैं कि सबकी बिजगीमें आर्य्य आर्य्य है । हम उस आर्य्यको देखते हैं, यहमतें हैं उरते हैं हिम्मत हारकर बैठ जाते हैं या उसके पार करनेकी विस्तृत

योजनाओंमें सब बातें हैं। प्रायः होता है, योजनाएँ बनती ही रह जाती हैं
बास्स मुसकराता ही रह जाता है।'

[रेडियो संघ, धर्मपुर विसम्बर १९३१]

बुद्धान्तिके अतिरिक्त चित्र-निर्माणका एक उपाय यह भी है कि अपने
कल्पको सामान्यके बचसे विशेषके द्वारा व्यक्त किया जाय। कुछ सामान्य
है, पर काम या नीम कहना विशेष है। सामान्यमें चित्र-निर्माणकी शक्ति
नहीं होती विशेषमें होती है। हर्बर्ट स्पेन्सर कहते हैं—'हम जो सामान्य-
के माध्यमसे नहीं सोचते बल्कि विशेषके माध्यमसे सोचते हैं। बात यही
है। इस उध्यक्षी सत्यतासे वार्ताकार उदात्ता से उदात्ता है। सामान्यके
माध्यमका एक उदाहरण है

'मातृत्वर्षमें आध्यात्मिक प्रश्नोंपर अनादि काकसे विचार होता रहा
है। प्रत्येक युग तथा प्रत्येक विद्यामें अनेक बारों तथा अनेक वृत्तोंकी
उत्पत्ति हुई है।

[प्रसारिका बुलाई विसम्बर १९३१]

इसे विशेषके माध्यमसे भी कहा जा सकता है—'भरीरको तो हम
अपनी आँसुसे देखते हैं आत्मा कहीं दिखायी नहीं पड़ती। कहीं आत्मा है
भी क्या? है भी तो क्या है? कहीं आती है? मृत्युके बाद धरीरका
नाश होनेपर कहीं जाती है? क्या वह धरीरपर छिटकर भी जाती है?
परमप्रायसे उसका क्या सम्बन्ध है? मायासे उसका क्या नाश है? यह
संसार क्या है और आत्मा इससे किस तरह मुक्त-विमुक्तनी है, ऐसे सारे
आध्यात्मिक प्रश्नोंपर हमारे मातृत्वर्षमें प्राचीन काकसे ही विचार होता
रहा है। विचारकोंने अपने-अपने ढंगसे सोचा है, अपने-अपने बाद कलासे
है—अज्ञानकार है विविधताकार है विज्ञानकार है, लभिकताकार है, ऐसे
ही अनेक कार हैं।

सामान्य रूपसे कहा जा सकता है कि 'गाँवोंको स्वावलम्बी होना चाहिए म्वाकसम्बन्धनपर ही उनका मुक्त निर्भर है। इसीको विनोबा भावे विरोपोंके द्वारा इस प्रकार कहते हैं

गाँववालोंको अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिए। यही उच्छा स्वराज्य है। गाँवमें ग्रामसक्ति है। उसीसे वहाँ पैसेका निर्माण होता है। गाँवकी पकड़की सारी चीजें गाँवमें पैदा हो सकती हैं। गाँवमें कपड़ा बन सकता है, मकान बन सकते हैं। जो बोड़ी-सी मरद बाहरसे चाहिए, वह भी मिल सकती है। इस तरह बहुत सारा काम गाँवकी अपनी शक्तिसे होना चाहिए। हम खाते हैं, तो खुद अपने हाथोंसे खाते हैं दूसरोंके हाथसे नहीं खा सकते। खाया हुआ अपनी ही पचनेप्रियसे पचाते हैं, हमाय मोशन वुसय कोई नहीं पचा सकता। गाँवकी खुदकी ताकत बन बनेगी तभी गाँवमें स्वराज्य जायेगा—जो मरेगा वही स्वर्ग देखेगा। स्वर्ग देखना चाहते हो तो मरनेकी तैयारी करो। गाँव सुखी हो गाँव जानाब हो—यह चाहते हो तो अपनी ताकतसे काम करो।'

['जिनेली प्रबन्धन-संग्रहसे]

इस प्रकारका एक उदाहरण और लें। पंचवर्षीय योजना और नारी शीर्षक वाचमि कहा गया है

'पंचवर्षीय योजनाके दो मुख्य उद्देश्य हैं—

[अ] लोगोंके लिए उच्च जीवन-स्तर और

[ब] सामाजिक न्याय'

[रेडियो-संग्रह जनवृत्त वितम्बर १९५३]

सामान्य श्रोता इससे क्या समझेगा ? उसके मनमें जीवन-स्तर और सामाजिक न्यायकी कौसी धारणाएँ बनेंगी ? श्रोताके मनके सामने कोई चित्र उपस्थित हो सके इसके लिए विरोपोंका उपयोग करना होगा—'पंचवर्षीय योजनाका पहला उद्देश्य लोगोंको सुखी बनाना है, देशमें इतना बन पैदा करना है कि सबकी अच्छा खासा मिके अच्छा कपड़ा मिके, रङ्गनेकी अच्छा

हुवाहार मजान मिले । समूह देसका हिसाब स्याकर देता गया है कि देसका हर आबमी हर रोड सिफ छ' गये वैसेका रूप-भी छाटा है । यह बीसत हिसाब है, इसमें उन बोधोंका भी हिसाब है, जो रोड स्पये-बाठ जानेके रूप-भी छाते हैं । इसका मतलब यह कि देसमें ऐसे बहुत लोग हैं जिन्हें रूप-भीके दर्शन भी नहीं होते । पंचवर्षीय योजनाके द्वारा हमें ऐसा उपाय करना है कि सबको अच्छा, खाता मर पेट मिल सके । मतलब यह कि हमें लोगोंको रहन-सहनका स्तर ऊँचा उठाना है । ['सामाजिक न्याय' को भी विद्येपोंके माध्यमसे प्रस्तुत करना होगा ।]

साहित्यिक शास्त्रोंमें भी विद्येपोंकी सक्रियता उपयोग किया जा सकता है । यह कहनेकी अपेक्षा कि 'कल्पना ही प्रतीकोंका निर्माण करती है', यह कहना कि 'यह कल्पना ही है जो हमें अपने आत्मा पूँछको माया और घट्टीको आदरके रूपमें उपस्थित करती है' अधिक विद्यमय कठत' माकार्यक होना ।

विभात्मकताका एक साधन तुलना भी है । वस्तुओंकी तुलनाके द्वारा भी विभात्मकता जा सकती है । इसके लिए अपनी कल्प वस्तुकी उपाय हम दूसरी वस्तुसे केत हैं । काम्मोंमें तो इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है । इससे काम्मका सौन्दर्य भी बढ़ता है । उदाहरणार्थ, रातस द्वारा ही जानेपर उर्बेची पूर्णित हो गयी थी उसका सौन्दर्य अधिक बढ़ गया था लेकिन मुक्तिके बाद उसका सौन्दर्य फिर निराला गया । महाकवि कासिदास कहते हैं—'लगा बीसे यह कल्पनाके निकल जानेपर अँधेरेसे झूटी हुई रात हो या रातके समय बिना झुँझाली अग्निची कण्ट हो या बंधाभी यह इसी प्रकार कासिदास काल बादलोंमें कमकठी हुई विजलीको कलहटीपर लिखी हुई स्वर्णरेखाक रूपमें चित्रित करते हैं । बहीरधान अपनी विद्विनी भारमाकी विकलता व्यञ्जित करनेके लिए कहते हैं—'तन-मन मोर रहै धस जोसे । इस तरहके अनिमित्त उदाहरण उपस्थित करने जा सकते हैं ।

अनुभवों बरता इस प्रकारकी तुलनाओंका व्यवहार अपने भाषणोंमें सदा ही किया करते हैं। कुछ उदाहरण आशय भावसे ही सीबिए—

१—सारी दुनियामें विचारका प्रवाह इधरसे-उधर और उधरसे-इधर बहता रहता है। मानसूनकी तरह क्रान्तिकारक विचार भी बाहरसे यहाँ आयेगे और यहाँसे बाहर आयेगे। हवाकी तरह विचारको भी किसी पास पोटकी जरूरत नहीं होती। विचारको कोई भी दीवाल नहीं रोक सकती।

२—मुस्लिमों का यह है कि मानव अपने निजके जीवनको सूख बनाये और विश्वके—समाजके—जीवनमें किसीन हो जाय। जिस तरह मरी समुद्रमें डूब हो जाती है, उसी तरह मानव अपनी सारी शक्ति परमेश्वरमें डूब करे। हजार मस्तकों हजार हाथों और हजार नेत्रोंसे हम विश्वरूप भयान्की सेवामें डूब जायें जो हमारे सामने खड़ा है।

३—हिन्दुधर्ममें जो तीम-चार बड़े सभ्यता हो गये हैं, उनमें हर्षका नाम आता है। हर्षके कपड़ेका वर्णन आया है। वह मेरे समान एक नीचे और एक ऊपर चोरी पहनता था, किसानकी तरह सावकीसे रहता था। राजाकी मही खड़ी थी कि सम्पत्तिका सबसब दान देते आता। फिरसे कमाना और फिरसे दान देना—यह क्रिया अच्छी थी। सूर्यनारायण समुद्रसे पानी खींच के आते हैं और प्लुता के आते हैं सतता बाबमें सौदा देते हैं। आरा पानी के आते हैं और मीठ पानी के आते हैं। इसी प्रकार राजाको होना चाहिए।

['त्रिवेणी' प्रवचन-संग्रहसे]

इन सभी उदाहरणोंमें यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार यन्त्रीय धर्म भी स्पष्ट हाकर आँखोंके सामने आ जाती है। हाँ तुलना करते समय जो सबसे बड़ी विशेषता होगी चाहिए, वह इन सभी उदाहरणोंमें है : अप-रिचित वस्तु या विचारकी स्पष्ट अभिव्यक्तिके लिए उनकी उपमा परिचित वस्तुओंसे ही आनी चाहिए। अगर हम कहते हैं कि विचार हवाकी तरह बहिये-कहीं जा-जा सकता है तो अपना कथ्य स्पष्ट होता है, लेकिन अगर

इस उद्देश्यकी धरतीका विस्तार व्यञ्जित करनेके लिए कहें—'अमेरिकाके रेगिस्तान सहाराका विस्तार ही भारतके जिन समाने सहाराको नहीं देखा है, उनके समाने उद्देश्यके विस्तारका कोई स्पष्ट चित्र सामने नहीं आयेगा। उन्मा सदा परिचित वस्तुअस्ति ही बौ आनी चाहिए। ही प्रप्ल हो सकता है—किन्तु लोगोंकी परिचित वस्तुअस्ति? वार्ताकारकी नहीं, भोताओंकी। और इसके लिए यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि यह किसके लिए, किस बर्णके भोताओंके लिए वार्ता प्रसारित कर रहा है। वार्ताकारको इस बातपर ध्यान रखना पड़ेगा कि उसकी वार्ता बर्णके लिए है महिलाओंके लिए है, बामीनोंके लिए है या शिक्षितों एवं साहित्यिकोंके लिए है। थोटा-बगौटा प्रमाण किन्तु प्रकार वार्ताकी रचना-पर पड़ता है, इसका विवेचन हम आगे यथास्थान करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि वार्ता किन्तु बर्णके लिए है उसकी परिचित वस्तुओं द्वारा ही उसमें विश्रमयता आनी चाहिए।

विश्रामकृतमें सबसे अधिक वाचक होती है संस्कार। बड़ी-बड़ी संख्याओंका सुनना थोटाओंको बहुत ही अर्थिकर होता है। सभी अनुभवों प्रसारककर्ताओंके इसपर खोर विना है कि वार्ताओंमें जाँकड़ोंका कमसे-कम व्यवहार होना चाहिए। जिन एस० कार्नाइल साऊ सभ्योंमें करते हैं कि 'नीरस जाँकड़ोंको दूर रखिए। लेकिन जाँकड़ोंके बिना काम तो चलनेवाला है नहीं इसलिये उन्हें नी आवश्यक और प्रभावोत्पादक संघर्ष प्रस्तुत करना वार्ताकारका कर्तव्य है। कार्नाइलके ही सभ्योंमें 'बड़ी-बड़ी संख्याओंको विश्रामोंके परिचयित कर दीजिए। उदाहरणके लिए बीसा कि वेनेट उनवर करते हैं कि कोई वार्ताकार नवर-योजनापर शीघ्रतः समय थोटाओंको आवासीय सभ्यताकी शक्ति देना चाहता है। यह जानता है कि सामान्य थोटाके लिए बीसे नये हवाका कोई अर्थ नहीं है बीसे ही पचहत्तर हवाका भी। लेकिन अगर यह कहें, 'इस नये नगरमें हर व्यक्तिको एक अपना घर होगा और हर नवविवाहित बर्णोंको सब सुविधाओंके साथ

एक फीट', तो वह ऐसा कुछ कह रहा है, जिस ओला सरस्रासे ग्रहण कर सके।

इस तरहका एक उदाहरण हमलोग प्रसारित वातामोति से । आकाश वापीसे प्रसारित वातामोति अधिकतर नीरस आँकड़े ही प्रस्तुत किये जाते हैं। 'नवीन भारतके तीर्थ-स्थान' वातामोति यह एक संघ है—

'मयूरगभीका पानी अब प्रतिवर्ष बीरभूम बरमान और मुनिदाबाद, इन तीन जिलोंकी ६ लाख एकड़ भूमिका अभियेक कर रहा है और इस विधानसे ३६ लाख मन अतिरिक्त बाग और बाबक बंगालको प्रतिवर्ष मिल रहा है।'

[आकाशवासी प्रसारिका अर्प्रैल-जून १९२६]

सबभूष सामान्य ओलाके लिए छ' लाख और आठ लाखमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार, जसा ३६ लाख मन बीसा ही ४० लाख मन। इन आँकड़ोंसे कोई निश्चित धारणा इनके सम्बन्धमें नहीं बनती। लेकिन वातामोति चाहे ती निश्चित धारणा बनायी जा सकती है 'मयूरगभीके पानीस अब प्रति वर्ष बंगालकी बरतीका लगभग पाँचवाँ हिस्सा सींचा जा रहा है—बीरभूम बंगेरास बरमान और मुनिदाबादकी छ' लाख एकड़ बरती। उससे उपज भी बढ़ी है। बंगालको अब प्रति वर्ष ३६ लाख मन अधिक बाग और बाबक मिल रहा है। इस अधिक उपजका मतलब यह है कि बंगालके हर आदमीको अब हर साल २८ पैर बनास अधिक मिल रहा है। इस बनाससे कलकत्ताका हर आदमी—बच्चा बुढ़ा और बवान स्त्री-पुरुष—लगभग बेड़ नहीं एक रास भोज खा सकता है।

इस प्रकार आँकड़ोंकी धनिका उपयोग कर रेडियो-ओलाओंकी मानसिक बुद्धिके लिए पर्याप्त रोचक सामग्री उपलब्ध की जा सकती है।

रेडियो-वार्ता और श्रोताको ग्रहण एवं स्मरण-शक्ति

फुटबालके मैदानमें जब निश्चित समयपर एक बल नहीं उपस्थित होता तो कुछ बल एकदरछटा गोल करके अपनेको विजयी समझ बैठता है। रेडियो-वार्ता-प्रसारणके समय भी वही बातकारके सामनेसे अनुपस्थित रहता है। फलतः यह भ्रम बना रहता है कि कहीं वह भी एकदरछटा गोल तो नहीं कर रहा है। रेडियो-कार्यक्रमोंकी सार्थकता उनके प्रसारणमें नहीं बल्कि प्रेषणोपकरणोंमें है। वार्ताकार अपनी वार्ता प्रसारित कर देता है, यही उसका काय समाप्त नहीं हो जाता बल्कि उसे यह भी हैसिया है कि दूसरे छोरपर उसकी बातें कैसा सुनी ही नहीं जाती बल्कि ग्रहण भी की जाती हैं। एक अनुभवी रेडियो-सेक्टर कहता है कि वार्ताकारकी दैनिक-पर यदि कोई ऐसा यत्न लगाया जाय जिसकी जगती-जुगती बस्तिर्वा वार्ताकारको सूचित करती रहें कि कितने लोग उसकी वार्ता सुन रहे हैं और उनपर उसकी क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं तो उसे अपने प्रसारण कार्यकी उत्कृष्टताका कुछ ज्ञान हो। ऐसा कोई यत्न अभी तक बना नहीं है इसलिए वार्ताकारको प्रसारणके पहलूमें ही इतना संतर्क रहना है कि उसकी वार्ता उसके श्रोताओंके पास पहुँचे ही। इस पहुँचनेका अब यह है कि वार्ताकार को कुछ बड़े योजा उसे सरलतासे समझे उसे ग्रहण

करे, उससे प्रभावित हो, उससे आनन्द प्राप्त करे और आवश्यकता समझे तो उसे स्मृतिपूर्वक कोपमें रक्षित रख सके ।

कैसा पहले कहा था चुका है, रेडियोका योशा निकम्ब-पाटकोंसे मिश्र है, उसे प्रसारित रेडियो-कायक्रमके किसी अंशको दुबारा सुननेकी सुविधा नहीं है । रेडियोसे काव्य-प्रसारणके सम्बन्धमें बोनामी बोमी कहते हैं— 'मुद्रित कविता पढ़नेसे मिश्र यदि आप उस प्रसारित रूपमें सुनते हैं तो उसका अधिकतमिक अर्थ एक ही बारमें ग्रहण करनेमें आपको समर्थ होना चाहिए । रेडियो-वाक्ताके लिए भी यह बात बिल्कुल सही है । भाषा किसी वाक्ताकी एक ही बार सुनकर उसका अधिकतमिक अर्थ ग्रहण करनेमें समर्थ हो सके इसका अधिक उत्तरदायित्व वाक्ताकारपर है । इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि वाक्ताकारकी अभिव्यक्ति साफ और सुबझी हुई हो । रेडियोके सभी अनुभवों प्रसारणकर्ता इस उत्तरदायित्व स्पष्ट अभिव्यक्तिको प्रसारणकी पहली शर्त मानते हैं । देखने और कहनेमें यह बड़ी सीधी और छोटी-सी बात है, पर व्यवहारमें स्पष्ट अभिव्यक्ति बहुत ही कठिन है । प्रसिद्ध बक्ता बल कानेंगी कहते हैं— स्पष्टता के मूल्य और उसकी कठिनाईको कम मत समझिए । अभी हास हो मीने एक आयरिश कविको अपनी कविताएँ सुनाते हुए देखा । आगे समय तक बर्षकोंका वह प्रतिघट भी यह नहीं समझ रहा था कि वह किस विषय-पर बातें कर रहा है । जनताके बीच और व्यक्तिगत जीवनमें भी ऐसे वाक्ताकार बहुत हैं । अपने यहाँकी प्रसारित वाक्ताओंसे ऐसे अनेक अर्थ उद्धृत किये जा सकते हैं, जिन्हें केवल एक बार सुनकर समझ लेना कठिन हो नहीं असम्भव है । 'आकाशवाणी प्रसारिका [अक्तूबर-दिसम्बर १९५७] में प्रकाशित दो वाक्ताओंसे एक-एक अर्थ उद्धृत है । पहला अर्थ 'आचार्य बलकमका दरबार' शीर्षक वाक्ताका है ।

मनुष्यके हृदय और मस्तिष्कका दौरान जब-जब साहित्यके कर्णोंमें अभिव्यक्त हुआ है तब-तबके उस साहित्यके लक्ष्मी जब हम आम्बोचना

करते हैं तब हमें यही एक सत्य बृहिनोचर होता है कि अपने युगजीवनके रूपके भीतर रहकर ही जमीं परिस्थितियोंमें मनुष्यने अपनी मान्यताके सीमित रूपको अग्रगण्य बनानेका प्रयास किया है। अपने युगकी पूजा-सामग्री से असीमकी उपासना करके सीमित मानव अपने साहित्यके सत्प्रयाससे असीम जन ज्ञानके सत्प्रयत्न करता चला आ रहा है। वेदोंके युगसे आरम्भ करके ब्राह्मण उपनिषद् तथा पुरुषोंके युगोंकी साहित्यिक साधनाका वर्णन करते हुए वर्तमान युग तक पहुँचकर हम इसी सत्यका साक्षात्कार करते हैं कि प्रत्येक साहित्यमें मनुष्यने अपने युगकी सामग्रीके भीतर ही अपने युगकी परिस्थितियोंके भीतर ही अपने अग्रगण्य स्वभावकी साधना करनेका प्रयास किया है।

यह ब्रह्मचर्य बंध 'रोमांस शीर्षक वार्ताका है यूरोपके इतिहासके पृष्ठोंको उच्छेदनेसे यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण मध्य युगके अर्धमें धीसी रोमान रीति-रिवाज तथा क्रुसीन सभके द्यूरेनिक रीति-रिवाजोंमें एक विशिष्ट विभाजन है। दोनों प्रकारके रीति-रिवाज सम्प्रदायके निर्माणकी ओर अग्रसर हो रहे थे परन्तु दोनोंके माग मित्र मित्र थे। क्रुसीनसभ वर्गने सम्प्रदायके लिए सामान्य विधि धर्म निरपेक्ष सरकार, बीछा कविता और रोमांस प्रदान किया। इन अनेक क्षेत्रोंमें रोमांस एक महत्वपूर्ण शैल थी।

इन दोनों उदरधर्मोंकी बोधमयताके सम्बन्धमें अपनी ओरसे कुछ कहनेकी अपेक्षा यही उचित ज्ञात होता है कि इसके साथ ही सरल एवं स्पष्ट अभिव्यक्तिके उदाहरण-स्वरूप भी एक बंध उद्भूत कर दिया जाय। यह बंध 'सर्बोदय' शीर्षक वार्ताका है। यह वार्ता भी आकाशवाणीसे प्रसारित हुई थी। उद्भूत बंधमें यह देखा जा सकता है कि सत्यकी शोध-नी यन्त्रीर विषयकी व्याख्या किस प्रकार की गयी है

'यह सर्बोदय विचार है क्या? पहली बात यह समझ लेनी चाहिए यह कोई बार नहीं है बल्कि कई प्रकारके बार मात्र प्रकृतित है।

एक मुक्त विचार है। महात्माजीन स्वयं जोर देकर कहा था कि उन्होंने किसी भी प्रकारके बावकी स्थापना नहीं की है। वह तो केवल सत्यकी घोषमें लगे रहे थे। इसी घाबमें उन्हें बहिष्ता मयवा सर्वोत्पका विचार मिला था।

सत्यकी घाब महात्माजीके घाब समान्त हा चुकी या जा कुछ उन्हेंने कुछ निकाला सतना ही सत्य है—सो बात भी नहीं है, और न कोई सर्वोदय विचारवाला ऐसा कहेगा। सत्यकी घाब मानव-जीवनके प्राथमिक चरित्रों पर भी पड़ी है और जब तक मानव जाति काम्य है, वह घोब चरित्रों पर भी पड़ी है। मानवकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह कठोर सत्यकी चरित्रों पर भी पड़ी है। यह उसका सहज स्वभाव है। जब आपका छोटा बच्चा बालक पूछता है—'बानुजो यह क्या है?' तब वह सत्यकी घाब ही कर रहा है। बसत्य तो घर बैठे-बैठे गढ़ लिया जा सकता है, बस कि दुनियामें हर दिन होता है।

यह अर्थ प्रसिद्ध सर्वोदय तथा जयप्रकाश माण्यमकी बार्ताका है। बहनेकी भावस्यकता नहीं कि जनताके सम्मर्कमें रहकर जमे अपनी बार्ते प्रत्यक्ष अपने सम्मर्कवाला व्यक्ति बनिम्पक्तिमें सरलता और स्पष्टताक मूल्यको महीमार्ति जानता है, वह लोगोंके सामने बसए हो ही नहीं सकता। प्रत्यक्ष भाषणोंमें बसए होनाका अर्थय कम रहता है। बुझकी और उलझी हुई बातोंको मुनकर जब दसकोंके मुंहपर हवाइयां उड़ान बसती है, तब समझदार जनताका अपनी दुबलता स्वयं घात हो जाती है। मोठाकीकी प्रत्यक्ष अनुसन्धितिके कारण रेडियो-बार्तामें बसए होनाका अर्थय कम रहता है। इसकी बार्ता हम पहले ही कर जाये हैं। बार्तामें बसए होनाका अर्थय कम रहता है। इसमें लिए आवश्यक है कि बार्ताकी रचनाकर्मी सीधी-सादी और सरल हो बार्ताको सुना-फिराकर न कहकर बिलकुल सीधे अपने कहा बाम। रेडियोके सम्मर्क सभी अनुमती व्यक्ति इन बार्तापर जोर

बैठे रहे हैं। आज एव० कार्लाइल कहते हैं— स्पष्ट और प्रत्यक्ष होइए। बड़े विचारोंको माने हीनिए, पर उनके सम्बन्धमें स्पष्ट रहिए।

बार्ताकी शोचनम्यता बढ़ानेके लिए कुछ और बातोंपर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। बिजमयता दृष्टान्तके उपयोग सामान्यके समर्पनमें विशेषके व्यवहार आदिकी चर्चा इसके पहलेवाले अध्यायमें ही चुकी है। यहाँ कुछ और बातोंकी और संकेत किया जा रहा है। अपने धर्मोंको स्पष्ट करनेके लिए कभी-कभी उनकी जाबुति आवश्यक होती है। बार्ताको दुष्ट होनेसे वे स्पष्ट हो जाती हैं। हाँ वे बार्ते विभिन्न सभ्यतासिद्धियोंमें बुझपयी कार्य यह बहरी है अन्वया प्रयत्न हास्यास्पद समेता। सफल लेखक एवं वक्ता इस बातके महत्त्वको बख्ती तरह समझते हैं। उदाहरणके लिए, 'सर्वोदय' बार्ताके ही कुछ वाक्य लें

मानव एक सामाजिक प्राणी है, और वहाँ भी वह पाया जाता है छोटे-बड़े समूह बनाकर रहता है। मानव-जीवन समूह वा समाजसे अलग चल ही नहीं सकता। मनुष्य अकेला नहीं रह सकता।

यहाँ अन्तिम दो वाक्योंमें पहले वाक्यकी बातको ही दूसरे-दूसरे धर्मोंमें बुझायी गया है। गम्भीर विषयोंकी व्याख्यामें ही जाबुतिकी अपेक्षा और अधिक होती है।

बार्ताओंकी शोचनम्यतामें बहुत अधिक बाधा टेक्निकल धर्मोंके व्यवहारसे होती है। बार्ता सामान्यतः अपने-अपने विषयके विशेषज्ञ ही बेंते हैं और अपने विषयको प्रस्तुत करते समय उनमें अपने विषयके दार्शनिक धर्मोंके व्यवहारकी सामाजिक प्रवृत्ति होती है। वैज्ञानिक जयदास्त्री वाकर, ओबदास्त्री कला-विशेषज्ञ—सभी अपने विषयपर बोलते समय बहुधा ऐसे दार्शनिक धर्मोंका व्यवहार करते हैं जो सामान्य श्रोताओंकी समझके बाहर हैं। बार्ताकारको पहले ही यह सोच लेना है कि वह केवल अपने क्षेत्रके दूसरे विशेषज्ञों ही बार्ते कर रहा है या समाजके सामान्य व्यक्तियोंसे यदि वह सामान्य व्यक्तियों तक अपने विचारोंको पहुँचाना

बाहूता है तो उसे अपने विषयके टेक्निकल छात्राङ्ग व्यवहारमें बचना होना यदि कोई ऐसा छात्र जा हो जाय तो उसे उसकी व्याख्या करनी होगी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक बर्फीगबन्ड नामका परिचय देने हुए एक बार्ताकार कहता है

‘बोचने २५ बर्फी नामुसे ही बिद्युत्-चुम्बकीय तरंगोंके सुभाषा सम्पन्न करना प्रारम्भ किया। ये तरंगें बड़ी हैं जिनमें रेडियो द्वारा ध्वनि प्रसारित की जाती है। उस समय हम नरमाङ्ग उत्पन्न करने या बहून करनेकी सम्झने रीति ज्ञान न थी। वानने इन तरंगोंको उत्पन्न करने के लिए अत्यन्त मुदिघातनक बीज छोड़े स्वानम आ मकन योम्य एक यन्त्र बनाया जिनमें प्लैटिनम आइरो पास्कोक बीच बिन्दुगारिमी छटना या और इस प्रकार बिद्युत्-तरंगें उत्पन्न होती थी।

[आकाशवाणी प्रसारिका अग्रेत-बुन १९२६]

इस संघमें ‘बिद्युत्-चुम्बकीय तरंग’ एक टेक्निकल पद्व माया है। सामान्य मोता इस समझ नहीं पायगा। यह नहीं है कि यहाँ बार्ताकारमें उसकी व्याख्याका प्रयत्न किया है पर यह एक पक्षिकी व्याख्या [जिनमें रेडियो द्वारा ध्वनि प्रसारित की जाती है] अर्थात् है। इसमें थोडा यह समझ नहीं पायगा कि यह ध्वनि कहाँ होगी है—बरनीपर या आसमानमें ? इनकी विशेषताएँ क्या हैं ? आदि। बिद्युत्-तरंगोंकी व्याख्यापर ही बोमकी इसमें सम्बन्धित खोजका महत्त्व निभर है। बार्ताकार उक्त स्वस्वर बरने थोडाबोको सामान्य छात्राङ्गलीमें बतला सकता था कि आप मेरी जो आवाज सुन रहे हैं वह साधारण ध्वनि-तरंगके सहार नहीं रेडियो-तरंगोंके सहार जा रही है। आपमें सौ गज दूर बैठे हुए आसानीसे आवाज रिठनी बेरसे आपके पास पहुँचेगी उसके बहुत पहले ही मेरी आवाज कोसोंकी दूरी तय कर आपके पास पहुँच रही है। साधारण ध्वनि-तरंग पृथ्वीका अन्दर लगामेमे कम-कम ४० फुटे सेपी जबकि रेडियो तरंग एक सेकेण्डमें पृथ्वीके साडे सठ अन्दर जाके जाती है। इसी तरह

है इसकी मति । इसीको विद्युत्-तरंग भी कहते हैं । सोचने इसके गुणोंके सम्बन्धमें जो खोज की गई बहुत ही मूल्यपूर्ण है । वाहि-वाहि ।

सभी क्षेत्रके विशेषज्ञोंको सामान्य भोताओंके लिए वार्ता प्रसारित करते समय इस बातपर ध्यान रखना चाहिए । भोताओंमें अधिक ज्ञानका अनुमान कर केना वार्ताकी बोधनम्यतामें बहुत ही बाधक होता है । भोता एक ही मानसिक स्तरपर नहीं होते । उनकी शिक्षा संस्कार, ज्ञान सभी विभिन्न स्तरोंपर होते हैं । वार्ताकारको इन विभिन्नताओंपर ध्यान रखना है । उसे अपनी वार्ताको उस स्तरपर रखना है, जहाँ वह अधिकारिक भोताओंके लिए बोधगम्य हो सके । ऐसा न करना वार्ताओंको अतफल बनाना है । प्रो० बर्मने रेडियो-वार्ताओंकी बोधगम्यताके सम्बन्धमें खोज की है, और वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सबसे कम समझमें जानेवाली वार्ताएँ नहीं रखी हैं, जिनमें वार्ताकारोंने अपने भोताओंमें बहुत अधिक ज्ञानका अनुमान कर लिया था । जेनेट इनवर भी यही बात कहते हैं कि कुछ खोज अपने भोताओंकी मौखिक सूचनाओंकी बहुत अधिक मात्रा केते हैं और उनकी बातें भोताओंके सिरके ऊपरसे ही निकल जाती हैं । सबसुख वार्ताकारको तबक रहना है कि उसकी बातें भोताओंके सिरके ऊपरसे ही न निकल जायें बल्कि सिरके भीतर पहुँचे । भोताओंमें किन् प्रकार अधिक ज्ञानका अनुमान कर लिया जाता है, इसका परिचय बररी नाथ' दीपक वार्ताके इस अंशसे मिल जा सकता है । वार्ताकार मन्दिरो-की चर्चा करता है :

‘हम मन्दिरका चिखर उत्तर भारतके चिखरमन्दिरोकी नापसँसीदा है जिसे शुक्रनासा चिखर भी कहते हैं । इसके ऊपरी छोरपर एक आभक्तक सटीला कला है । अलकनन्दाकी घाटीमें इसी प्रकारके मन्दिर हैं और इनका सम्बन्ध विष्णुकी आराधनासे है । परन्तु पाठ हीन्दी मन्दाकिनी घाटीमें विष्णु-मन्दिरोका साम्राज्य है । उनपर स्पष्ट रूपसे अतिथकी स्थापत्य

कलाका प्रभाव है, यद्यपि स्वयं केदारनाथका मन्दिर मूनागी घौलीकी भाव दिशाका है, विशेषकर उसके अग्रभागमें बने हुए छप्परका त्रिकोण ।

[रेडियो-संग्रह, प्रकटकर दिसम्बर १९२३]

इस उद्धारणसे स्पष्ट है कि बार्ताकारने यह मान लिया है कि मोता स्थापन कलाकी विभिन्न शैलियोंसे परिचित है । स्पष्ट-स्वरूपपर यह विभिन्न शैलियोंके परिचयके लिए संकेत देता है पर ये संकेत बहुत सीमित और अपर्याप्त हैं । बार्ताकार यदि इनके बरके मन्दिरोंके सम्य-विषय उपस्थित कला ठो बे मोताओंके लिए विशेष बोधमय होते ।

बी० बी० सी० की बार्ताओंकी बोधगम्यताके सम्बन्धमें प्रो० बलन झाप की पदी जिस खोजका उद्देश्य पहले किया गया है उससे इस महत्वपूर्ण बातका भी पता चलता है कि बार्ताओंकी बोधगम्यता केवल अभिव्यक्तिकी सरलता और स्पष्टतापर ही नहीं बल्कि विषयकी रोचकता पर भी निर्भर है । उक्त खोजके आधारपर कहा गया है—'रोचक बार्ता उस बार्ताकी अपेक्षा सरलतासे समझी जाती है, जिसे समझना वास्तवमें आसान होनेपर भी जिसका विषय गौरव होता है । बात सही है । जिस विषयमें मनुष्यकी रुचि होती है उसकी बोधगम्यतामें दो-चार कठिन शब्द भी बाधक नहीं हो सकते । इसीलिए सभी रेडियो-कला-विशेषज्ञ बार्ताकी रोचकतापर जोर देते हैं । जॉन एस० कार्लिश्मन कथन है—'इसका निश्चय कर लो कि विषय सामान्य रुचिका है । सैनेट जनवर कहते हैं कि 'टिक्किडिनके दृष्टान्तके साथ यदि सफलतापूर्वक प्रतिप्रतिष्ठा करनी है, तो रेडियो-बार्ताको मोताओंका ध्यान अपनी विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति के द्वारा आकृष्ट करना पड़ेगा । बार्ताकारके लिए रेडियो-बार्तामें रोचकता के महत्वको स्वीकार करना आवश्यक है ।

विषयकी रोचकताके सम्बन्धमें यह अवश्य कहा जा सकता है कि रुचि व्यक्ति-व्यक्तिके अनुसार बदलती रहती है एक व्यक्तिकी रुचि

गर्हितमें हो सकती है। दूसरेकी धर्तनम तीसरेकी छाहिल्यमें हनी प्रकार विभिन्न व्यक्तियोंकी रचियाँ विभिन्न विषयोंमें। यह रचियोंके विभिन्न-विभिन्न बरातकों और प्रकारोंकी बात है, यह अपनी जगहपर रही है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन रचियोंका एक सामान्य धरातल भी होता है, कुछ ऐसे स्तर भी हैं जहाँ व्यक्ति-व्यक्तिकी रचिका अन्तर मिट जाता है। उन स्तरोंपर बात करके वार्ताकार अपनी वार्ता-अधिकार्य धोताओंके लिए रोचक बना सकता है। यहाँ कुछ ऐसे स्तरोंकी बात की जा रही है।

मनोवैज्ञानिक मानव-मनके अध्ययनके द्वारा इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि मनुष्यकी सबसे अधिक रचि स्वयं अपनेमें होती है। प्रोफ़ेसर जेम्स हार्बे पाबिन्सन कहते हैं कि 'जायनेकी रचियोंमें हम लोग हमेशा ही अपने विषयमें सोचते हुए जालूम पड़ते हैं और हमकोबोमिसे अधिक लोय जानते हैं कि छोटे रहनेपर भी हमकोय इसी प्रकार सोचते बातें हैं।'—हमकोयोंके लिए स्वयं अपनेसे बढ़कर दूसरी कोई भी रोचक वस्तु नहीं है। वार्ताकार मनोविज्ञानके इस अध्ययनसे लाभ उठा सकता है। वास्तविक विषयका सम्बन्ध धोताओंके जीवनसे होना चाहिए। धोताकी रचि पंचदशवीय धोत्रणामें अन्न-उत्पादनमें उतनी नहीं मिलनी इस बातमें है कि यह अन्न-उत्पादनका प्रभाव स्वयं उसके और राष्ट्रके दूसरे व्यक्तियोंके जीवन पर क्या पड़ेगा। नाव-तीछकी नयी मेट्रिक प्रणालीमें उतनी रचि नहीं मिलनी इस बातमें है कि यह नयी प्रणाली उसके जीवनको किस प्रकार लामान्त्रित करेगी। इस प्रकार किसी भी वार्ताका सम्बन्ध धोताओंके जीवनसे जोड़कर उसे रोचक बनाया जा सकता है। इस सम्बन्धमें जिन एच० वार्ताकार एक उदाहरण देते हैं—'स्कूलके छात्रोंकी ही टीमेंके बीच अभी हाल ही प्रचारित एक वाद-विवाद इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करेगा। विवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विषयपर था, जिसके लिए समतामतिक इतिहास पाठनीय धारिके विस्तृत ज्ञानकी अपेक्षा थी।'—किन्तु अन्त

होता अगर सत्रोंके स्व-शासनके गुण-बोधोंपर बाद विचार प्रस्तुत किया गया रहता। सत्रमुख यह विषय स्मृतिके छात्रोंके लिए अधिक अधिकार होता।

यहाँ आकाशवाणीसे प्रसारित वार्ताओंके सम्बन्धमें यह कह देना उचित बात होता है कि सत्रके विषय वार्ताकार नहीं निश्चित करते रेडियो कार्यकर्ताओंकी सप-रेखा बनानेवाले वहाँके अधिकारी ही निश्चित करते हैं। वे ही वार्ताओंके विषय निश्चित करते हैं और सत्रपर बोझोंके लिए वार्ताकारोंको आमन्त्रित करते हैं। वार्ता देनेके इच्छुक व्यक्ति जो कभी-कभी अपनी रचनाएँ विचारार्थ भेजते हैं, पर चूँकि सत्रमेंसे अधिकतर रचनाएँ वार्ता नहीं होतीं, वे स्वीकृत नहीं हो पातीं। अयाचित रचनाएँ भी वार्ताकी दृष्टिसे सफल होने तथा आकाशवाणीकी नीतिके अनुकूल होनेपर स्वीकृत होती हैं, और हो सकती हैं, इसमें संशय नहीं। विषय का निश्चय चाहे रेडियो-अधिकारी करें, चाहे वार्ता देनेके आकाशवाणी व्यक्ति सम्बन्ध में वार्ताके रोचक पक्षपर होना चाहिए। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। मैं समझता हूँ कि रेडियो-वार्ताके रोचकताकी कितनी कठिन प्रतिबोधितासे मुझरना पड़ता है, सत्रनी और किसी भी साहित्य-रूपको नहीं। सुईकी नोक कितनी दूरीपर गीत चक रहा है, नाटक ही रहे हैं, बिनाकी रोचकतामें संशय नहीं किया जा सकता। इन सबके साथ रेडियो वार्ताकी प्रतिबोधिता है। थोटा रेडियो-वार्ता सुने और सुनता रहे, सुईको गीतवाले स्टेजपर म लमा है वार्ताकारको इस बातपर ध्यान देना है। इसीपर उसकी सफलता निर्भर है। और यह विषय और समिन्धितको रोचकताके द्वारा ही हो सकता है।

रोचकताके सम्बन्धमें दूसरी बात ध्यान देनेकी यह है कि मनुष्य विचारों और भावोंसे अधिक दूसरे लोगोंके जीवनमें अमिच्छित रहता है। दूसरे लोगोंके जीवनकी कहानियोंमें भी आकषण होता है। कहानियों और उपन्यासोंमें जो इतनी रोचकता होती है, उसका यही रहस्य है। बिना वार्ताओंके विषय मानवीय तत्त्वोंसे सम्बन्ध रखेंगे वे रोचक होंगे इसमें

सम्बन्ध नहीं। पात्र-विचारकों अपने धनुमणों बाकिसे सम्बन्धित वार्ताओंमें इस मनोवैज्ञानिक सत्यका उपयोग किया जा सकता है।

अतीतक श्रोताओंकी बोध-शक्ति और वार्ताकी बोधगम्यताके सम्बन्धमें विचार हुआ। अब हम श्रोताओंकी स्मरण-शक्तिसे सम्बन्धित प्रश्नोंपर विचार करेंगे। वार्ताकारको अपने श्रोताओंकी मानसिक शक्तिका भी ध्यान रखना पड़ता है। कोई भी बात स्मृतिमें टिक सके इसके लिए वे सभी बातें अपेक्षित हैं जिनकी जरूरत हम अबतक करते रहे हैं। वार्ता सरस और स्पष्ट हो सहज बोधगम्य हो उसमें विचारमकला हो साथ ही मगपर पहुँच प्रभाव डालनेकी शक्ति हो। इनके अतिरिक्त भी कुछ और बातें हैं जिनपर ध्यान देना आवश्यक है।

एक ही बार बहुत-सी बातोंको सुनकर उन्हें स्मरण रखना सम्भव नहीं है। सामान्य श्रोताकी मानसिक शक्ति सीमित होती है, वह एक ही घण्टा बनेक तथ्योंको ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिये यह आवश्यक है कि छोटी-सी अवधिमें वार्तामें बहुत-सी बातें न रखी जायें। आकाशवाणीसे प्रसारित वार्ताओंकी अवधि पाँच मिनटसे लेकर बीस मिनट तककी होती है; बीस मिनटवाली वार्ताएँ तो विशेष कार्यक्रमोंमें ही होती हैं, सामान्य वार्ताकी अवधि दस मिनट रहती है। इस मिनटकी वार्तामें बनेकानक तथ्योंकी रखनेका प्रयत्न उचित नहीं लेकिन होता अधिकतर यही है। वृत्ति वार्ताकी बात तो बहुत है, एक-एक अनुच्छेदमें इसमें तथ्योंकी रखा जाता है कि श्रोताकी स्मृतिके पक्षमें कुछ नहीं पड़ पाता। एक बराहुरण लीनियू

कच्छोकर आरंभ इन्स्पेरेन्स द्वारा ११ दिसम्बर, १९५४ को प्रकाशित आँकड़ोंके अनुसार विदेशी बीमा-कम्पनियोंके पास भारतके लोगोंकी २ लाख ४४ हजार पॉलिसियाँ बालू थीं जो १ अरब ३६ करोड़ ९३ लाख रुपयेकी थीं और हर साल ७ करोड़ ४५ लाख रुपया उनकी प्रीमियमके रूपमें बरा किया जाता है।

हिन्दुस्तानी बीवन-बीमा-कम्पनियोंकी कुल आयदाद ११ दिसम्बर,

१९५४को कम्युनिज्म ३ अरब १ करोड़ ३३ लाख रुपयेकी बी और बिदेसी कम्युनियोंकी कम्युनिज्म ५० करोड़ ९१ लाख रुपयेकी । इससे भारतीय बीमा-कम्युनियोमे १ अरब ६४ करोड़ ९० लाख रुपया यानी ५४६ प्रतिशत रुपया सरकारी सिक्पूरिटिवोमें ४८ करोड़ ५७ लाख रुपया यानी १६ प्रतिशत रुपया प्राइवेट कम्युनियोंके हिस्सोंमें और ३० करोड़ ९७ लाख रुपया यानी ३० प्रतिशत रुपया रहल भूमि और अकानों जायिम ठगाया हुआ है । इसी प्रकार बिदेसी कम्युनियोका ३० करोड़ ६४ लाख रुपया भारतीय कम्युनियोमें और बाकी बिदेसी सरकारोंकी सिक्पूरिटिवोमें लगा हुआ है ।

बीबम-बीमाका राष्ट्रीयकरण क्यों किया गया है, इसपर प्रकाश डालते हुए मूलपुर्ब बित्तमन्त्री श्री बेशमुखने निम्न तीन बात बतानी थी—

१—दूसरी पाँचसाखा योजनाके लिए सरकारको पूर्वोकी सक्त बकरण है ।

२—पहली पाँचसाखा योजनामें मह नीति बगायी गयी थी कि जनताकी बचतका जितना रुपया है, वह सब सरकारके अधिकारमें होना चाहिए ताकि वह महपुन्य रहे और राष्ट्रके कामोंमें खपाया जा सके ।

३—देशमें समाजवादी आर्थिक ढाँचा ज़ायम करनेके लिए भी सक्त कार्रवाई बकरणी है ।

[आकाशवाणी प्रसारिका अप्रैल-जून १९५६]

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि एक साब इतने अधिकों और ठप्पोंका आना बार्ताको निश्चित रूपसे असंख्य बना देगा । लेकिन बार्ताकारोंमें ऐसा करनेकी प्रवृत्ति स्वभावतः होती है । वे सोचते हैं बस ही मिगटका ठो समम है इसमें अधिक-अधिक सामग्री मोतासीको देनी चाहिए, पर ऐसा सोचना बचित नहीं । इस बातको भी याद रखना है कि वेतारके तारके दूसरे छोरपर बैठा हुआ मोटा अपना रेडियो-सेट बन्द न कर दे या जो कुछ सुने भी उसका कुछ बंध भी सरे याद रहे । सभी अनुमती प्रसारणकर्ता प्रसारक-सम्बन्धी इस महत्वपुन्य बातको समझते हैं और इस

पर और देते हैं। ब्रिटेन इनकारका कथन है—'भारतीय प्रकृति बहुत अधिक धर्मोंको भर देनेकी होती है। वास्तुमें इतनी सूचनाएँ भर देनेकी कि उसका सम बुटने-बुटने हो जाय। कुछ कहनेकी विद्या देनेकी अपने ज्ञान की दुसरेके साथ बाँट देनेकी यह उपबेधालक प्रकृति है। अपनेमें यह बड़ी अच्छी प्रकृति है। लेकिन इसे कठिनतम समुदायन चाहिए, नहीं तो इसकी प्रेरणासे ऐसा प्रसारण होता है, जो श्रोतासे स्वयं आँक कर देता है। डॉन एच० कार्महाइल कहते हैं—'एक ही माध्यममें बहुत-से निचारोंका ज्ञान उपलब्ध पेश करनेवाला होता है। बोड़े-से समयमें भाव बहुत-सी बातोंके बारेमें अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सकते। अपने मिगटों और सेकेण्डों में भीड़ मत लपाइए।' और, पैमकिनके धर्मोंमें 'बी० बी० सी०' की श्रोता-अनुसन्धान-समितिको नियमित रूपसे अपनी रिपोर्ट भेजनेवाले समय हृयेदा ही यह विचार प्रकट करते हैं कि अमुक वार्ताकारने प्रसारणके लिए निश्चित समयमें बहुत अधिक बातें कहनेका प्रयत्न किया। वार्ताकारको इन सभी अनुभवों कोगोके विचारको वार्ता लिखते समय अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए।

यहाँ अनुभवों विज्ञानोंने यह कहा कि रेडियो-वार्तामें वार्ताकी भीड़ न जगामी जाय कुछ ही धर्म स्पष्ट एवं प्रभाषोत्पादक रूपसे रखे जायें वहाँ यह भी कहा कि वार्तामें जायी मुख्य बातोंको कुछ-कुछ अन्तरपर व्यक्त किया जाय। हर धर्मके छाप उसकी पर्याप्त व्याख्या होनी चाहिए। अनेक धर्मोंको एक ही साथ गिता देना उचित नहीं है। इससे वार्ताको सम जानेमें भी श्रोताको बटिमाई होगी और उन्हें स्मरण रखना तो असम्भव होया ही। यही एक बात यह भी कह भी जाय कि वार्तामें कोई ऐसा स्वतः या ऐसा धर्म नहीं जाना चाहिए, जिसको समसर्गक किए जाये या पीछेके श्रोताओंके फिरसे देखनेकी जरूरत हो। मुद्रित सामग्रीना बाँटक जाने या पीछेके श्रोताओंको आवश्यकतानुसार फिरसे देना संभव है। रेडियोका श्रोता ऐसा नहीं कर सकता, इसकी कर्षा नहीं हो चुकी है। रेडियो-श्रोताकी इत

सीमाको ध्यानमें रखना आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि वार्ताकार कहे कि 'अरबोंने चीन भारत और यूनानसे क्रमशः कागज और प्रेस विक्रिस्ता और साहित्य तथा दर्शन और विज्ञान प्राप्त किये तो श्रोताके लिए यह समझना कठिन होया कि किन विषयोंका सम्बन्ध किन देशोंसे है। पाठक इसे सरसतासे समझ लेना। वार्ताकारको देशों और विषयोंको बसम-बसम करके समझाना होगा।

स्मरण-शक्तिसे सबसे अधिक शत्रुता तो बड़ी-बड़ी संख्यामत्से होती है। उन्हें स्मरण रखना बहुत ही कठिन होता है। प्रसिद्ध लेखक माक ट्वेन कहते हैं कि 'संख्याएँ बहुत ही एकरस और अनाक्यक होती हैं और वे टिकती नहीं। इन्हें आकर्षक और स्मृतिमें टिकाने योग्य बनानेके अनेक उपाय हैं जिनके उल्लेख पहले भाग में ही कीये उदाहरण भी दिये गये हैं। इनके सम्बन्धमें हमबरेका यह विचार ध्यानमें रखना चाहिए—'अगर आप श्रोताको आकर्षण देते हैं तो उन्हें मापनेके लिए मापबन्ध भी धीजिए। पहले बीसा कहा गया है, श्रोताके लिए सत्तर लाख और नब्बे लाखमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। अगर उन्हें प्रति व्यक्ति प्रति मन्त्र प्रति दिन खादि की छोटी हकाइयोंमें परिवर्तित कर दिया जाय तो उनका महत्त्व भी ज्ञात होगा और वे संख्याएँ याद भी रह सकेंगी।

वार्ताका रूप-संयोजन भी स्मरण-शक्तिसे सम्बन्ध रखता है। श्रोता वार्ताको सुनता भी जाता है और उसे मूकता भी जाता है यह हम देख चुके हैं। वार्ताको समाप्तिपर सामान्य श्रोताके लिए उसके प्रारम्भ और विकासके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कह सकना सम्भव नहीं होता। वार्ता-रचना श्रोताकी इस सीमाको देखते हुए किस प्रकारकी हो यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। प्रोफेसर वेस्तने कहा है—'हमारा मस्तिष्क मुख्यतः एक सम्बन्ध करनेवाला यन्त्र है। लेकिन इस सम्बन्ध करनेवाले यन्त्र को उन्हीं वस्तुओंसे अधिक सहायता मिल सकती है, जो स्वयं परस्पर सम्बन्ध हों जिनकी कड़ियाँ एक-दूसरेसे अच्छी तरह जुड़ी हुई हों। अगर हम कोई

मुसंगटित कहानी सुनते हैं तो उसे स्मरण रख पाते हैं। क्या? बीजे-इनबर इसका उत्तर देते हैं—'आप कहानीके साथ चल रहे हैं—आपने एक घण्टा पहले जो सुना, उसको इस क्षण आप जो सुन रहे हैं इसके साथ जोड़ते हुए। अर्थात् आपका सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध-स्थापन ही मर्कसूत्रि करता है। इसके विपरीत हम कोई मनोवैज्ञानिक कहानी से सज्जते हैं जिसमें सब कुछ भाव-ही-भाव है, केवल चेतना प्रवाह, एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें कोई सम्बन्ध नहीं। वैसे कहानी मस्तिष्कमें ठिकठी नहीं उतरना प्रमाण मात्र शेष रह जाता है। इसी प्रकार विचारोंकी मस्तिष्क-स्वस्थतापर निर्मित वार्ता स्मृतिके लिए अनुपयुक्त होती है। वास्तविक विचारोंका शृङ्खलाबद्ध रहना आवश्यक है। तर्क-सम्पन्न कारण-कार्य-सम्बन्धोंपर आधारित वार्ता ही सफल वार्ता नहीं हो सकती है। इनबरेके ही शब्दोंमें—'अगर आप अपने विचारोंको प्रेषणीय बनाना चाहते हैं, तो बड़ी सावधानी-से उन्हें सुनिश्चित क्रममें रचिए, जिससे उन्हें पहली बार सुननेपर ही सतक केन्द्रक समझना ही आसान न हो बल्कि याद रखना भी सम्भव हो।

अन्तमें यह कहा जा सकता है कि कोई वार्ता अपने अपेक्षित श्रोताओं-के पास पहुँच सके इसके लिए आवश्यक है कि वह सरल एवं स्पष्ट ही उसमें वास्तविकी बुझा-किटाकर न बहूकर लीपे प्रायतः डंगरे कहा जाय, कठिन शब्दोंकी विभिन्न घण्टासिद्धियोंमें व्यक्त किया जाय टेक्निकल या धारावीय शब्द बिलकुल न हों हों भी तो इनकी पर्याय व्याख्या की जाय आँकड़ोंसे बचा जाय और, समके बिना काम न चलनेवाला हो तो उन्हें छोटी इकाइयोंमें आकर्षक रूपमें उपस्थित किया जाय शब्दोंकी धरमार न की जाय और रोचकता एवं मुसम्बद्धतापर विशेष ध्यान दिया जाय। श्रोताकी समझकी सहायता देनेका एक उपाय यह भी है कि शब्दप्रवाह वास्तविकी अन्तमें वास्तविकी मुख्य वार्ताका साक्ष्य है दिया जाय वैया अथी किया गया।

रेडियो-वार्ता और व्यक्तित्वका प्रश्न

बी० बी० सी०के कुछ प्रसिद्ध सफल रेडियो-वार्ताकारोंके नाम हैं
 जे० बी० प्रीस्टली ए० जे० एस्कन सी० एच० मिड्ल्टन एमिस्टेयर कूक
 और थॉम ह्युस्टन। इनके सम्बन्धमें एस्कन एण्ड डोरोथियन एस्कनकाविचार
 है कि इनकी सबसे बड़ी विशेषता जो इन्हें दूसरे सामान्य वार्ताकारोंसे
 पृथक् करती है, अपने श्रोताओं और अपने बीचकी दूरीको मिटाने
 की है। इनकी वार्ताएँ सुनते समय श्रोता यह नहीं अनुभव करते कि
 वार्ताकार उनसे कहीं दूर है। इसका कारण यही कहा जा सकता है
 कि इन वार्ताकारोंमें रेडियोके माध्यमकी सूक्ष्म अपेक्षाओंको भी यही गह
 रासि समझा है और उनके अनुकूल कार्य किया है। रेडियो-माध्यमकी
 सबसे बड़ी विशेषता आत्मीयता है। सचमुच रेडियो-जैसा आत्मीय माध्यम
 हमारे युगमें दूसरा नहीं है। यही आत्मीयताका व्यवहार किसी विशेष
 अर्थमें नहीं हो रहा है आत्मीयताका धीमा-सा अर्थ मैत्री और स्नेह-सम्बन्ध
 का ही किया जा रहा है। जब हम अपने पास बैठे दो-तीन मित्रोंसे बातें
 करने करते हैं हमारे बीचकी दूरी मिट जाती है, हम सभी आत्मीयताका
 अनुभव करने लगते हैं। सफल रेडियो-प्रसारण भी इस प्रकारका अनुभव
 कर सकता है। इस सम्बन्धमें स्मिथोनेल पैमकिनका कथन है कि वास्तवमें
 प्रत्येक प्रसारण एक आत्मीय अनुभव है जिसमें प्रसारणकर्ता [एक व्यक्ति
 हो या तो हों] और एकाकी श्रोता [अलग-अलग बैठे हुए काबों

व्यक्तिमोम-से एक] सहमोभता होते हैं । मैं समझता हूँ यह बात सबसे अधिक रेडियो-वार्ताके लिए ही सही है । दूसरे माम्बनके साथ रेडियोकी तुलना करनेपर इसकी सत्यता स्वतः स्पष्ट हो जायगी ।

मुद्रण मन्त्रके माम्बनसे हम रेडियोकी तुलना कई दृष्टियोंसे कर जाये हैं एक और दृष्टिसे फिर देखें । भेदकको जो कुछ कहना होता है, वह स्थिर देता है उसका कम्प मुद्रित हीकर पाठकोंके पास पहुँचता है । इसका अर्थ यह हुआ कि भेदक अपने पाठकोंके सामने प्रत्यक्ष कम्प नहीं आता, पाठक भेदकके व्यक्तित्वके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें नहीं आता । रेडियो-वार्तामें ऐसी बात नहीं होती यहाँ वार्ताकार प्रत्यक्ष रूपसे अपने श्रोताओंके सामने अपने विचार प्रकट करता है उसका व्यक्तित्व श्रोताओंके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें रहता है । रेडियो-वार्ताके स्वकम्पपर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, या पड़ना चाहिए, इसपर विचार करनेके पड़ेगे रेडियोकी तुलना सामूहिक प्रेषणीयताके दूसरे उपसम्बन्ध माम्बनसे कर केना उचित होगा । एक माम्बन है व्हेटफ़ोर्म यामी प्रत्यक्ष भाषण । प्रत्यक्ष भाषणमें बक्ता जबस्म ही अपने बर्षकों-श्रोताओंके सम्मुख उपस्थित रहता है, पर यहाँ वह व्यक्तिसे बातें नहीं करता समूहसे बातें करता है । व्हेटफ़ोर्मसे अलग-अलग व्यक्तिवर्षासे बातें करना सम्भव है ही नहीं । यहाँ एक व्यक्ति एक बड़ समूहके सम्पर्कमें आता है फलतः व्यक्ति-व्यक्तिके बीच जो आरंभिक सम्बन्ध होना चाहिए, वह नहीं होता । रेडियो-वार्तामें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे ही बातें करता है, यह दूसरी बात है कि यह दूसरा व्यक्ति अलग-अलग बैठे हुए हजारों व्यक्तिवर्षा अर्थ है । यहाँ व्यक्ति-व्यक्तिके बीच होनेवाली आस्मो-यता सम्भव है । सामूहिक प्रेषणीयताका तीव्रतम माम्बन है टेलिविजन । टेलिविजनमें भी बक्ता अपने बर्षकों-श्रोताओंके सामने प्रत्यक्ष कम्पे रहता है । यहाँ बर्षक बक्ताको अपनी आँखोंके सामने विषय देखते रहते हैं । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विषयमें रहना ही दूरीही सम्बन्ध करता रहना है । किन्तु देखते समय हम प्रत्यक्ष ही अनुभव करते रहते हैं कि

चित्रमें अपनेबाबे व्यक्ति हमसे दूर है। फलतः उनसे जातीयताका अनुभव नहीं किया जा सकता। रेडियो-बार्तामें कलाकी केवल आवाज ही श्रोताओंके पास पहुँचती है, और यदि बार्ताकार प्रतिभा-सम्पन्न एवं अपनी कलामें कुशल है, तो वह अपनी बाबीसे श्रोताओंको उनके निकट ही अपनी उपस्थिति अनुभव करा सकता है। कभी-कभी हम अपने बाबें बन्द किये बारामसे बैठकर अपने सम्मुख उपस्थित मित्रोंकी बातें सुना करते हैं। बार्ताकारकी उपस्थिता श्रोताओंको ऐसा अनुभव करा देनेमें ही है। बी० बी० सी के एक प्रसिद्ध प्रसारककर्ताका नाम है मैक्सवेल। कुछ कालमें वह मध्य एशिया समाचार एजिनसकी कुछ नसोंके लिए प्रसारित किया करता था। इस प्रसारणके समय उसकी आवाज साधारण आवाजकी अपेक्षा काफ़ी भीमी होती थी क्योंकि वह मरीचोंसे भरे अस्पतालमें समाचार सुनाता था। उसके इस प्रसारणकी काफ़ी प्रशंसा थी। बार्ताकार-श्रोताके बीच जिस जातीयताकी अवेद्या होती है, उसे स्थापित करनेमें वह सफल पड़ा था।

अब एक यह स्पष्ट हो गया होया कि रेडियोका माध्यम प्रेयनीयताके सभी माध्यमोंमें अपना पुसक अस्तित्व रखता है। इसकी अपनी विशेषताएँ हैं। इसमें व्यक्ति-व्यक्तिके बीचका समीप सम्बन्ध रहता है। बेतारका तार सचमुच दो समीप तारोंको मिलायेबासा होता है। इसमें एक व्यक्ति बोझता है ऐसा मनुष्य जो मशीन नहीं है, धामोफोनका रिफ़ाह नहीं है, टैडिबिजन या डिस्मोका विष नहीं है, बल्कि एक समीप प्राणी है। यही बार्ताकारके व्यक्तित्वका प्रश्न आता है।

रेडियो-बार्तामें व्यक्ति विशेष बोझता है, इसलिए व्यक्तित्वका प्रश्न स्वाभाविक ही है। अनुभवों प्रसारककर्ताभिने प्रसारणमें व्यक्तित्वको सबसे अधिक महत्त्व दिया है। लियोनेल पैमकिनके शब्दोंमें—“इस सबसे नयी प्रश्नकी सबसे बड़ी विशेषता है—व्यक्तित्व। माइक्रोफ़ोनके माध्यमसे व्यक्तित्वके ब्यक्तारणक प्रक्षेपणपर ही किसी प्रसारणकी प्रभावोत्पादकताका

बनना-विपणना निर्भर है। अपनी पुस्तक 'आइकास्टिंग' में हिरेडा मीचिजन-का कथन है— प्रसारणमें विश्वका महत्त्व है, यह है बीबन-दृष्टि—यह प्रसारण चाहे मनोरंजनका हो, शिक्षाका हो संगीतका हो, या और किसी दूसरे प्रकारके कार्यक्रमका हो। यह उन आनखीय प्राथियोंके बीच भारतीय सम्बन्ध प्रदान करती है जो परस्पर प्रत्यक्ष सम्पर्कमें कभी नहीं भी जा सकते थे यह व्यक्तित्वके उत्पत्तिका बड़ा देती है।

इसमें सन्देह नहीं कि रेडियो-वातामि वाताकारका व्यक्तित्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पर यह व्यक्तित्व है क्या? क्या कि डेक फार्मोनीने कहा है 'यह बुझकी और पकड़में न जानेवाली चीज है, फूझको पकड़की तरह ही यह विस्फेयणसे परे हो जाती है। यह व्यक्तिकी धारितिक आरिभक मानसिक सभी विद्येपताओंकी समष्टि है उसकी आरिभिक विद्येपताएँ, उसकी इच्छाएँ, उसकी प्रवृत्तियाँ उसका स्वभाव उसकी मानसिक बुद्धि उसकी पक्ति उसका अनुभव उसका प्रविष्टाण उसका बीबन, सब कुछ। सब दिखाकर व्यक्ति विद्येपका व्यक्तित्व बनता है। प्रत्येक व्यक्तिका अपना व्यक्तित्व होता है उसकी अपनी विद्येपताएँ होती हैं। जैसे हर आरिभिका चेहड़ा अपनी तरहका होता है, वैसे ही हर व्यक्तिका अपना व्यक्तित्व होता है। प्रविष्ट विस्तक एमसजने समय ही कहा है 'प्रत्येक व्यक्तिके स्वभावकी अपनी सुन्दरता होती है। अपना ईतिक बीबनमें इसका अनुभव हम करते रहते हैं उसका अपना सोचनका ढंग है बोलने और बातें करनेका ढंग है चलनेका ढंग है। ही आरिभके युग्ममें ऐसे अनेक उपकरण आ बसे हैं, जो व्यक्तियोंकी अपनी-अपनी विद्येपताओंको मिटाकर उन्हें एक सामान्य साधनें डालनका प्रयत्न करते हैं। उन उपकरणोंकी विसृष्ट चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि आधुनिक युग्ममें, यहाँ व्यक्तियोंकी विद्येपताएँ बीरे-बीरे बिट रही हैं यहाँ अपर हम किसीके बीबनमें कोई विद्येपता देखते हैं तो उससे प्रभावित होते हैं। इन विद्येपताओंका महत्त्व है। इन्हें ही हम अनुभवी वैयक्तिकता कहते हैं।

चूँकि रेडियो-बार्तामि व्यक्ति ही बोलता है, बीटा कि हम देख चुक है, उसमें वैयक्तिकताकी अभिव्यक्ति निश्चित रूपसे होनी चाहिए। येनट इनवर कहते हैं, 'प्रसारणमें सम्भवतः सबसे बड़ी जोख बंधितकता ही है।

रेडियो-बार्तामि वैयक्तिकताकी अभिव्यक्ति इस प्रकारसे हो कि श्रोता को लगे कि यह बार्ताकार कोई भी समझ या महेश नहीं हा सकता, यह विशेष व्यक्ति है, जो अपने अनुभवों और विचारोंको उसके पास पहुँचा रहा है। इसमें सोचनेका अपना रूप है, अभिव्यक्तिकी अपनी सीली है, जीवनके अपने अनुभव हैं। इस दृष्टिसे देखनपर ज्ञात होगा कि रेडियो-बार्ता क्या और साहित्यसे भिन्न नहीं है यह भी एक विशेष प्रकारका साहित्य है। साहित्य हावा क्या है? प्रसिद्ध फेंच क्लबक अर्नेस्ट डिन्ट वरार रेंगे— 'मैं कहता हूँ साहित्य आत्माभिव्यक्ति है और आत्माभिव्यक्ति वैयक्तिकता है।' अपनी विधिगतको जोख निकालना अपनी विद्यय दृष्टिसे किसी वस्तुको देखना और उसे अपने विशेष प्रकारसे अभिव्यक्त करना ही तो साहित्य है। रेडियो-बार्ता तो साहित्य ही है, और इसकी विशेषता भी वैयक्तिकताकी अभिव्यक्तिमें है।

इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुद्रित साहित्यका केवल जहाँ पूर्ववत् बन्नुमिच्छ हो सकता है, वहाँ रेडियो-बार्ताकारको आत्मनिष्ठ रहना पड़ेगा। यह ध्यानपरकता ही उसकी विशेषता है। रेडियोका श्रोता बन्नुमें सतनी सच नहीं रखता जिसनी बार्ताकारमें। वस्तु तो उसे कहीं भी मिल जा सकती है अकिन्तु बार्ताकारकी जीवन-दृष्टि जिसनी ओर हिंसा वैयक्तिक संकेत किया है तो बार्ताकारसे ही मिल सकती है। रेडियोका श्रोता रेडियोपर केवल बड़ी वस्तु प्राप्त करना चाहेगा जो उसे अन्यत्र नहीं मिल सकता। बार्ताकार यदि 'सीसंकि बेस क्लास' पर बार्ता दे रहा है, तो क्लासका मौलिक, ऐतिहासिक सांस्कृतिक और राजनीतिक परिचय तो श्रोताको कुछ पुस्तकोंके पन्ने उलटनेपर सहज ही मिल जा सकता है। रेडियोपर इनके परिचयके प्रसारण एवं भवणकी आवश्यकता

क्या है ? शोता सो वार्ताकारसे यह जानना चाहेगा कि उसने क्या-क्या किया है ? क्या देता क्या अनुभव किया । दूसरे धर्ममें शोता वार्ताकारकी भाँतिसे क्या-क्या देखना चाहेगा । यह वस्तु उसे वार्ताकारको छोड़कर और किसी से नहीं मिल सकती । इसी प्रकार यदि वार्ताकार पंचवर्षीय योजनामें पद्योगोंकी प्रगतिपर वार्ता दे रहा है तो प्रगतिका परिचय तो सरकार द्वारा प्रकाशित एवं प्रचारित विज्ञापनोंमें शोता सरलतासे उपलब्ध कर सकता है, वह तो उद्योगोंके विकासका परिचय वार्ताकारकी दृष्टिसे प्राप्त करना चाहेगा यह दूसरी बात है कि वार्ताकारको यह परिचय आकाशवाणीकी नीतिकी सीमाओंके भीतरसे ही देना होगा । यहाँ कैबिनेट इनबारको हम फिर उद्धृत करना चाहेंगे— अच्छी बातकि सम्बन्धमें प्यान देनेकी बात यह है कि यह तटस्थ और सौपा-सावा विवरण प्रस्तुत करना नहीं है, वार्ताकारकी वैयक्तिकता मर्यादा अभिव्यक्त हीनी चाहिए । सचमुच रेडियोपर वार्ता प्रसारित करनेकी शर्तकता इसी बातमें है । यथास्थ घटनाओंपर आधारित आलोचन-कर्मकोंकी चर्चा करते हुए एक स्थानपर कुछ मैकनीसन कहा है कि रेडियो-कर्मकार केवल कैमरामैन या रिपोर्टर नहीं है वह इनसे कुछ अधिक है, कलाकार है । यही बात रेडियो-वार्ताके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है । रेडियो-वार्ताकार पुस्तकोंसे कुछ पन्ने निकालकर केवल पढ़ भर नहीं देता इपर-उपरसे संकलित सामग्री रेडियोपर केवल प्रसारित भर नहीं कर देता वह आत्माभिव्यक्ति करता है, अपनी जीवन दृष्टिसे शोताओंको परिचित कराता है साहित्यकारका काम करता है ।

यह साधारण काम नहीं है । साहित्य-सृजनके लिए साहित्यकारकी विश्व साधना और कल्पनाकी अपेक्षा होती है उससे कम अपेक्षा रेडियो-वार्ताकारको नहीं है । जैसा कि वैयक्तिक कहते हैं 'शोताओंके साथ मौलिक आत्मीयता बनाये रखनेके लिए कल्पना और वक्तव्यकताकी अपेक्षा है ।' रेडियो-वार्तामें वैयक्तिकताकी अभिव्यक्तिके लिए अपेक्षित साधना और समयकी और वार्ताकारोंका प्यान बनाया चाहिए ।

यहाँ जो कुछ कहा गया उससे यह न समझा जाय कि रेडियो-बार्ता केवल आत्मनिष्ठ ही हो सकती है, वस्तुपरक एवं तथ्य प्रदान नहीं। इस सम्बन्धम आगे दूसरे अध्यायमें विचार किया जायगा यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बार्ताएँ तथ्य-प्रदान भी होती हैं और हो सकती हैं, पर उनमें भी बार्ताकारके व्यक्तित्वकी छाँची तो मिळनी ही चाहिए, और जितनी क्षममें न हो सके तो तथ्योंके प्रस्तुतीकरणमें ही।

भोलाभाँसे आत्मीयता स्थापित करनेके लिए बार्ताकारके व्यक्तित्वमें किञ्च गुणाँकी अपेक्षा होती है इसपर भी विचार कर लेना चाहिए। एस्कन एण्ड डोरोमिडन एक्नके अनुसार, सफल प्रसारणकी मौखिक अपेक्षा है सचाई। इसका अर्थ यही है कि बार्ताकार अपनेको बिलकुल सच्चे रूपमें प्रकट करे वह अपने भोलाभाँसे कुरान न रखे। जैसा अभी पहले कहा गया है, रेडियो-बार्ताकार भी साहित्यकार है और साहित्यकारकी सबसे बड़ी विशेषताके बारेमें आचार्य बिनाबा माब कहते हैं—‘साहित्यिकमें एक मूल-भूत गुण होना चाहिए। उसके बिना कोई साहित्यिक नहीं हो सकता। वह है सन्धेष्टिटी यानी सचाई। और गुण हों या न हों साहित्यिकको सच्चा होना ही चाहिए—वह सच्चा सत्युस्य हो या सच्चा दुर्बल। सच्चा सत्युस्य हो तो सोनेमें सुवर्ण या चाँदी। लेकिन दुर्बल हो तो सच्चा दुर्बल हो। कूटनीतिज्ञ अन्तर अन्तरसे एक रहते और बाहरसे दूसरे दिखाई देते हैं। वे पाहें दुनियाको ठग लें परन्तु अपने-आपको ठग नहीं सकते। इसी लिए अपनेको प्रकट भी नहीं कर सकते। बार्ताकारको अपनेको प्रकट करना है—अपनेको यानी अपन पून व्यक्तित्वको जो कुछ वह है जो कुछ वह गोचर है, अनुभव करता है। इसीको अन्तर कहते हैं ‘मुझे अज्ञता है, व्यक्तित्वका मूल तत्त्व है समग्रता अपने पून अर्थमें जो हममें वास्तवमें है, उसे खोजना और उसका सबसे अच्छे रूपमें उपयोग करना।

आत्मीयताके लिए दूसरा गुण यह अपेक्षित है कि बार्ताकारके मनमें अपने भोलाभाँके प्रति सदमाह हो स्पष्ट हो। जॉन एस० कार्काइल्डना परा

मरा है 'बपने थोठाबोंके बारेमें सोचनकी मायत खातिए । जो वार्ताकार थोठाबोंके सम्बन्धमें भारतीयताके साथ सोचेना और उसे अपने प्रयत्न एवं बाबी द्वारा प्रकट करेया उसके प्रति थोठाबोंका भी आक्षेपण रहेया हममें सन्देह नहीं । 'हू बीप बीपसे बकता, है प्रेम प्रेमपर निर्भर'—किसी इन पंक्तियोंमें पर्याप्त सत्य है ।

इसके अतिरिक्त वार्ताकारके मनमें अपने थोठाबोंके प्रति बार-बार एवं सम्मानका भाव भी रहना आवश्यक है । यह इस प्रकार बातें करें कि थोठाबोंको अपनी हीनताका अनुभव न हो । हम जानते हैं कि कोई भी मनुष्य स्वभावतः अपनेको हीन नहीं समझता बल्कि भी अपनेका बच्चा कहा जानेपर कुछ मानता है । इसीलिए पारस्परिक व्यवहारमें उपरोक्त त्यक्तकी प्रकृति बहुत बातक समझी जाती है । जानताने टीक ही कहा है—'परामर्शका स्वागत शायद ही कभी होगा है । जिन्हें सबसे अधिक इसकी आवश्यकता होती है व इने सबसे कम चाहते हैं । सधनुष में जो जानता है आप नहीं जानत की प्रकृति रेडियो-थोठाके मनमें वार्ताकारके प्रति आत्मीयताका भाव नहीं आन देती । रेडियो-विषयके सभी अनुभव व्यक्ति इस तथ्यको स्वीकार करते हैं । वैमर्शिन बहुते हैं कि 'यू अनुभव कि वार्ताकार हमें हीन समझकर बातें कर रहा है । थोठाके मनमें धीम ही ऐसी शक्तको जन्म देती है जिसका कोई उत्तर नहीं है । उसहरणके लिए एक वार्ताका यह पहला वाक्य देखिए—

बच्चाके व्यक्तित्वके बारेमें कुछ कहनेसे पहले में उन बहिनके सन्देह को हटा देना चाहती हूँ जो यह सोचती हों कि बच्चोंका भी क्या कोई व्यक्तित्व होता है ।

इसका प्रभाव सुननेवाली बहिनोंपर क्या पड़ेगा ? वे कहेंगी—ये अपनेको बहुत समझती है । हमसे वार्ताकार और थोठाबोंके बीच आत्मीय सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सकता । एक दूसरी वार्तानी बुन पंक्तिवाँ देखिए—

मैं इस तरहसे अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। इनके द्वारा मैं यही समझाना चाहता हूँ कि शरीरमें प्रथियों या और मांसपेशियोंकी क्रिया प्रतिक्रिया या इन्तरे ही एक प्रकारकी स्थिरता पैदा होती है।

वार्ताकार कुछ ही बेर बाह फ़िर कहते हैं—

मैं अधिक-से-अधिक आपको यह समझा सका हूँ कि बिठना आप समझते हैं बीबन उससे कहीं बेबीदा या आश्चर्यपूर्ण है।

इसके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। हाँ वार्ताकारको इस प्रवृत्तिसे बचना अवश्य है। उसे यह नहीं समझना है कि वह थोटाबों-से ऊपर, किसी उच्च भावनापर प्रतिष्ठित है। उसे अपनेको थोटाबोंके सामान्य बराबरपर ही रखना है। पहले कहा जा चुका है कि वार्ताकार को अपने थोटाबोंमें अधिक ज्ञानका अनुमान नहीं कर लेना चाहिए, इसका यह अर्थ नहीं कि थोटाबोंको जानहीन ही समझ लेना चाहिए। थोटाबोंके मनमें वार्ताकारकी बाबीसे ऐसी भावना कभी नहीं आनी चाहिए कि थोटा अपनेको श्रेष्ठ समझता है। जे० बी० प्रीस्टलीके सफल रेडियो-वार्ता-मसा रणके सम्बन्धमें एक रेडियो निवेदन यही कहता है कि 'मासूम होता है जिनमें अपने थोटाबोंके प्रति आदर-भाव है, न वे उन्हें हीन समझकर ही बातें करते हैं न उनमें बहुत अधिक ज्ञानका अनुमान ही करके।

रेडियो-वार्तासे सम्बन्धित तीन प्रश्न

प्रश्न प्रारम्भ करनेके पहले अपने आकाशवाणीके बीबनका एक अनु-
 भव प्रस्तुत करनेकी इच्छा होती है। इस अनुभवका सम्बन्ध ज्ञानी एक
 ऐसी लक्ष्मीसे है जिसे मैं आकाशवाणीमें रहता, तो छापक नहीं कहूँ।
 रातको ७। बजे एक वार्ता हीनवाली थी किये था 'महान् आन्तिवापि
 चिन्तक आइसटाइन। सम्मानके १३ बजे बजे, पर वार्ताकारने अपना
 आलेख मेरे पास नहीं भेजा। मैंने वार्ताकारको फोन किया तो दूसरे धरेसे
 आवाज आयी—'आज दिनभर मैं बहुत व्यस्त रहा वार्ता लिखनेकी प्रयत्न
 ही नहीं मिली। अभी बड़ी वार्ता स्टेनोको लिखवा रहा हूँ। वार्ताका समय
 आना पष्ट बड़ा हीरिए, तो बड़ी हृषा होती। आठ बजे तक वार्ता
 टाइप होकर तैयार हो जावेगी। वार्ताकारको आकाशवाणीसे पहली बार
 वार्ता प्रसारित करनी थी इसीलिए ऐसा कह रहे थे। मैंने कहा—'आप तो
 आते हैं यहाँका समय बिलकुल निरिपठ रहता है एक मिनट भी इतर
 उबर नहीं होता। और, यह वार्ता तो किसी तरह ७। बजे होने ही
 है—श्रीमान-वर्धनर 'आकाशवाणी'में छपी हुई है। उत्तर आया—'बच्ची
 बात है, मैं कोशिश करता हूँ। रेडीओम रसकर मैं अपनी बल्लोपर पठ-
 त्तने लगा कि मैंने वार्ताका आलेख कुछ दिन पहले ही क्यों नहीं भेजा
 किया। आलेखकी समयसे मैंका कैना मेरा नाम या यी वार्ता प्रसारित
 करनेके लिए या सम्भव-वत्र [जिसे अनुभव-वत्र कहा जाता है] वार्ता-

कारकि पास मेरा जाता है, उसमें यह प्रार्थना रहती है कि आसेस निरिषठ प्रचारण-विधिसे इस दिन पहले आकाशवाणी केन्द्रमें जा जाना चाहिए, पर ऐसी कृपा कम वास्तविक करते हैं। मैंने उस दिन अपने स्टेशनके अधिकारियोंसे भी यह नहीं कहा था कि आकाशी वास्तविक आसेस अभी तक मेरे पास नहीं आया है, परन्तु कार्यक्रमके प्रसारणका पूरा उत्तर बाविरण मेरा था। घाट बनकर उस मिनट हो गये मुझे कोई सूचना नहीं मिली। मैंने फिर फोन किया तो उत्तर मिला—'मैंने डिक्टेशन तो दे दिया है पर वास्तविक अभी टाइप नहीं हुई है अब शुक्र ही हो रही है। मैंने कहा—'७॥ बजनेमें बहुत देर नहीं है, किसी तरह आपको यहाँ ७॥ बजेके पहले जा जाना है।' तो अन्तिम टाइप हुआ है, पठना लेकर मैं जाता हूँ।—वास्तविकने टेसीफोन रक्त दिया। बड़ीकी मुझे साय मेरे हृदयकी बरकत बढ़नी जा रही थी। मैंने वास्तविक एमार्चसमेष्ट सिन्डिकेट एमार्चसको दे दिया स्वयं दरवाजेपर आकर वास्तविककी प्रतीक्षा करने लगा। ७ बजकर २७ मिनट वास्तविकका पता नहीं २८ मिनटपर वे उपस्थित हुए। मैंने कहा—'साहब जितनी सिन्डिकेट है, उतनी देव नूँ। सिन्डिकेट तो बिलम्बित नहीं है, अभी टाइप ही नहीं हो सकी। मैंने सबकाकर पूछा—'तब कैसे होगा?' 'आप बकिए, मैं बोल दूँगा इस मिनटका बोझना क्या है। मेरे मुँहसे निकला—'सिन्डिकेट यह सिन्डिकेटके कोई वास्तविक नहीं प्रचारित होती कहीं कुछ पढ़ना हो जान। आप मुझपर विदवास रकिए, मैंने १४ वर्षों तक कारसेजमें पढ़ावा है, बोझने हीका तो पेसा है।—वास्तविकने कहा। मरी आँखोंके सामने अभी एक महीने पहले वास्तविक प्रचारित करनेवाके एक सम्बन्धकी तस्वीर नाच गयी। वे भी कारसेजमें प्रार्थनाकर हैं इस-साहब वर्षोंसे पढ़ा रहे हैं, अपनी लिखित वास्तविक प्रचारित करने क्ये तो भयसे उनकी आवाज छड़करा रही थी अपनी बड़ी ही वास्तविक भी उन्होंने समयसे दो मिनट पहले ही आत्म कर दी थी। लेकिन यहाँ मुझे तोचनेका समय नहीं था मैं उन्हें स्टूडियोकी तरफ

ले जाता। उस्तैमें कइया गया—'यार रेडिएमा कि बापकी बार्ताकि प्रभाव मुझपर भी पड़ सकता है। मैने उन्हें स्टूडियोमें माइक्रोफोनके सामने बैठा दिया और बतका दिया कि सामनेकी साज बत्ती बलनेपर बे बार्ता प्रारम्भ करेंगे। ७॥ बजे दूसरे स्टूडियोसे एनार्डसरने कहा—'यह बाकासबाभी पटना है। महान् जर्मनिकारी बिगठक—इस बार्ताक्रममें बाज 'आइसटायनके सम्बन्धमें एक बार्ता प्रसारित कर रहे हैं। पी... .. 'मैरा हृदय बड़क रहा बा—'वही कुछ पड़बड़ी न हो जाय। कहीं यह बोछते-बोलते एकएक बीपमें ही न बक जाय। कहीं बाकासबाभीकी नीठिके बिच्य कई बिबादास्पद बात न कह दे। मुझे इसे बोलने नहीं बेमा चाहिए या। पर बार्ताकारको साज बत्ती मिल चुकी थी उन्होंने बोछना मुक कर दिया बा—बिचकुल स्वामात्रिक बार्ता सीपी-साही माया नप-मुले बाक्य समुचित विचार। मै तो बंग रह गया। दूसरे दिन लोबाने कहा—'बहुत दिनके बाद मच्छी बार्ता सुननेकी मिली। मै सोचता हूँ क्या यह बार्ता इसीलिए सफल हो सकी कि बार्ता-कारके पास बार्ताका सामेन्ना नहीं या? रेडियो-बार्ता-सम्बन्धी यही पहला प्रश्न है—क्या यह आवश्यक है कि बार्ता सिधी जाय उसका लिखित आदेश हो?

बार्ता तो बलभीत है बार्ताकारकी मौखिक अभिव्यक्ति बार्ताकार बार्ता प्रसारित करते समय आदेश सामने रखकर भी भोलाबोकी यह आभास बेना चाहता है कि यह कोई लिखित रचना पड़ नहीं रहा है बल्कि अपने मौलाबोसे बार्ता कर रहा है। ऐसी स्थितिमें बार्ता किटनेक क्या आवश्यकता है? लिखित बार्ताका परिचाम भी तो अच्छा नहीं होत उसमें मौखिक बार्ताकी स्वाभाविकता नहीं आ पाती है बार्ता कुत्रिम जाती है। इसीलिए पी० पी० एकरस्के कहते हैं—'मै सामान्य नियम बा कर बाबुलिखिते बार्ता-पाठका निवेद कर दूंगा। यह नियम कुछ पिनि सामाजिक समाजके परिवर्तनोंमें बलता है और इनसे लोप सामाजिक

होते हैं। मोट्सकी सहायता ठन तक देने दी जाएगी जब तक वे बिचारों-को क्रमबद्ध रखनेमें सहायक हों और प्रेरणा और सहजताकी हत्या न करें। एस्कन एण्ड डोरोथियन एस्कनका कथन है— हाउस ऑफ कामन्स का यह नियम कि निश्चित धायन न दिये जायें केवल मोट्ससे सहायता ही थाय कुछ निश्चित संस्थानों द्वारा माला जाता है और बी० बी० सी० द्वारा जो इसका अनुकरण स्वच्छन्दतासे किया जा सकता है। मधवि वार्ताएँ हमेंसा निश्चित समय-मोबनाम बन्धी तरह मही बैठ लक्ष्मी और कुछ अधिकारियोंको भी बड़कते हुए हृदयसे उन्हें सुनता रहता पड़ेगा कि वार्ताकार बी० बी० सी० की नीतिके विरुद्ध न कुछ कहें पर इसके बाद बहुत अधिक होना। रेडियोको उसका एक बड़ा उपहार वापस मिल जाएगा जोताओंको कार्यरत मस्तिष्ककी अभिव्यक्ति सुननेका अवसर मिलेगा और प्रसारककर्ता अपनी सबसे बड़ी बाधा आलेखसे मुक्ति पा जाएगा।

बिना आलेखके सफल वार्ता प्रसारित करनेवाले व्यक्तियोंमें प्रेसीडेंट कन्वेस्टकी पत्नी एकिनर कन्वेस्टका नाम जाता है बिनके सम्बन्धमें जेनेट इनबर कहते हैं—‘मैत्रीपूर्ण जनपचारिक ध्वनि ज्ञानसे भरौ उनकी वार्ता केवल अपनी विषय-वस्तुकी दृष्टिसे ही नहीं प्रसारक-शैलीकी दृष्टिसे भी प्रशंसनीय थी। कल्पना एक निश्चित रूप होता था। वे व्यक्तिगत क्वचित् प्रारम्भ करती अपना कथ्य धुक् करती उसका विकास करती एक निश्चित विचार देकर उसे सपेटी और स्वाभाविक समाप्ति पर ला जातीं। इसी प्रसंगमें वे धार्ये कहते हैं—‘उनकी वार्ताका एक स्वातन्त्र्य होता एक निश्चित संयतन प्रत्येक विचार अपने पूर्ववर्ती विचारसे एक-संपत्त रूपमें निकलता। उनका ध्यय बिसे-दिने न होनेपर भी सरल होते।

यह सही है कि बिना आलेखके प्रसारित वार्तामें स्वाभाविकता और सक्रियता रहेगी पर प्रश्न है कि ऐसे कुछक वार्ताकार कितने मिलेंगे ? बिनकी निश्चित वार्तामें ही कोई स्वातन्त्र्य नहीं होता उनकी पौलिक वार्ता

की क्या एका होगी ? जगकी वार्तामें सब-कुछ बिलर-बिलर-सा रहेगा, वसमें कोई निश्चित प्रमाव शासनकी शक्ति नहीं रहेगी। एकिमर कन्वेंट जैसे नामोंकी अपवादमें ही गिनना चाहिए। जिस वार्ताकारकी चर्चा शुरूमें की गयी है, वे भी मैं समझता हूँ इसीलिए सफ़क हो सके कि वे अपनी वार्ता अपने स्टेनोगो सिखाकर आये थे फ़मल उन्हें अपनी विषय-वस्तुके इतिहास बिकासका ज्ञान था।

दूसरी बात यह भी है कि मौखिक रूपसे वार्ता देनेमें वार्ताकार पर्याप्त सुनियोजित सामग्री भी नहीं दे सकेगा। बड़े-बड़े भाषणोंकी सुनते समय हम यह अनुभव करते हैं कि इसमें मापूतियाँ अधिक हैं अप्रासंगिक बातें बहुत हैं। सामान्य वार्ताकारोंकी अलिखित वार्तामें भी यही बातें मिलेंगी। तीसरी बठिनाई अचि-सम्बन्धी है। रेडियोके कार्यक्रम निश्चित समयके बन्धनोंमें बँधे रहते हैं। वार्ताकारके लिए सचमुच यह कठिन समस्या है कि निश्चित अवधिमें अपनी वार्ता किस प्रकार समाप्त करे। यह सभी सम्भव हो सकता है, जब वार्ताकी सभी बातें निश्चित अनुपातमें रहें। इसके लिए जिस मानसिक अनुशासन एवं तन्मूलनकी अपेक्षा है उसे अजित करना सरल काम नहीं है, सभी एसा नहीं कर सकते।

चौथा प्रश्न प्रसारण-संस्थाकी नीतिना है। प्रत्येक प्रसारण-संस्थाकी अपनी नीति होती है अपनी सीमाएँ होती हैं। आकाशवाणीके साथ भी यही बात है। मौखिक वार्तामें यह कठोर हमेशा बना रहेगा कि वार्ताकार नहीं ऐसी बातें न कहें जिनमें हम नहीं चाहते।

और सबसे बड़ा कठोर तो वार्ताकारकी पब्लिसिटी और भयका है। बहुत ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें माइक्रोफोनके सामन पब्लिसिटीका अनुभव होने लगता है। वेने स्वयं ऐसे लोगोंको देखा है, जिन्हें स्टूडियोमें बोलते-बोलते पसीना हो जाता है। ऐसे व्यक्तिपोंसे मौखिक वार्ता करनेका अर्थ है उनके सम्मान और अपने नायक्यको सत्रमें डालना। इन सभी बातोंको देखते हुए वार्ताके लिए आलेखनी आवश्यकताको

सहज ही समझा जा सकता है। इनपर-जैसे प्रसारणकर्ता एवं विद्येयक माकेसको आवश्यक मानते हैं।

अब हम दूसरे प्रश्नपर आये। आकाशवाणी केन्द्रोंसे बहुधा यह सुना जाता है—'अभी' -- -- "को किसी हुई वार्ता पढ़कर सुनायी गयी। वास्तव यह कि वार्ताका लेखक एक व्यक्ति और उसे पढ़नेवाला दूसरा व्यक्ति जो या तो कोई एनाउन्सर होता है या रेडियो स्टेशनका कोई कर्मकार। विचारणीय यह है कि क्या एक व्यक्तिकी वार्ताको दूसरे किसीसे पढ़ना उचित है?

पहले हम यह देख लें कि ऐसा होता क्यों है? पहला कारण तो यह है कि वार्ताकार किसी व्यक्तिगत बटना या बस्वस्वताके कारण समयपर उपस्थित नहीं हो पाता। दूसरा कारण यह होता है कि आकाशवाणीके अधिकारी किसी वार्ताको महत्वपूर्ण समझते हैं और उसे विभिन्न केन्द्रोंसे स्थानीय एनाउंसरों द्वारा पुनः प्रसारित करते हैं। अग्रेजी वार्ताओंके अनुवाद भी बहुधा उही प्रकार प्रसारित कराये जाते हैं। तीसरा कारण हो सकता है—वार्ताकारकी धार्मिक अक्षमता। हो सकता है कोई विद्येयक बोल्नेमें असमर्थ हो अपना उसकी बोलीमें हककाहट मारिके बोप हों।

अब मूस प्रश्नपर विचार किया जाय। जैसा अबतक धार-धार कहा गया है, वार्ता लिखित होती हुई भी मौखिक समझी जाती है। वार्ताकार की सफलता इसी बातमें है कि वह श्रोताओंको अपनी लिखित रचनाका आभास भी न मिलने दे। अतः अब हम सुनते हैं—'अभी यह वार्ता पढ़ कर सुनायी गयी तो हमें लगता है जैसे वार्ता-प्रसारणकी कसाके मूसपर ही आघात किया जा रहा है।

एनाउंसरकी यह सूचना कि 'वार्ता पढ़ी जा रही है' हमें स्पष्ट सूचित कर देती है कि वार्ताका आलेख भी है, और इससे वार्ताका आक-पन कम हो जाता है। किसी समयमें बगताको अपना लिखित मापण पढ़ते देखकर या मोट्सके सहारे बोल्ते देखकर हमारे मनमें क्या प्रतिक्रिया होती

है ? बेह कामेबी इसे प्रसंगमें अभिव्यक्त करते हैं—'क्या मोट्स आपमें आपका आकर्षण पचास प्रतिशत कम नहीं कर देते ? क्या और थोड़ेसे बीच को आत्मीय और मुख्यवान् सम्बन्ध रहना चाहिए, क्या वे उसे रोक नहीं देते अपना उसका बना रहना कठिन नहीं कर देते ? क्या वे कृपितता का आतावरण नहीं उत्पन्न करते ? क्या वे रसार्थको यह अनुभव होनेसे नहीं रोकते कि बच्चाके पास जो विश्वास और शक्ति चाहिए, वह उसके पास है ? ठीक यही बातें लिखित वाचकिक पाठके सम्बन्धमें कही जा सकती हैं ।

यह आमकर कि वार्ता लिखित है, मनमें यह भाव भी जाता है कि वार्ता अच्छी होयो, तो 'सारंग' 'प्रसारिका या किसी पत्रमें ही छपेगी, और उसे वहीं पढ़ लिया जायगा । यह भाव भी वाचकिक आकर्षणको कम ही करता है ।

इस सम्बन्धमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही जायगी कि रेडियो-वार्ता जैसा कि हम पहले बेह चुके हैं कोई तदस्व वस्तुनिष्ठ वृत्ति नहीं है कि उसका पाठ कोई भी करे । उसका सम्बन्ध वार्ताकारके व्यक्तित्वसे होता है । एक व्यक्तिकी वार्ता जब बूतरा व्यक्ति पढ़ता है तो हम वार्ताकारके व्यक्तित्वके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आनेसे बचित रह जाते हैं । इस सम्बन्धमें एक रेडियो-विशेषज्ञने प्रसिद्ध अनिच किम्म डाइरेक्टर कार्स ड्रेवरकी एक वार्ताका बड़ा मनोरंजक पराहरण प्रस्तुत किया है । कार्स ड्रेवरने अपने उद्देश्योंके सम्बन्धमें बी० बी० सी० के लिए एक वार्ता लिखी । एक एनाउन्सरने उस पढ़कर मुनामा शुद्ध किया, जो थोड़ा-बहुत आकर्षक रहा । अनिच कुछ मिनटोंके लिए ड्रेवरने अपनी वार्ता शुद्ध पढ़ी । एनाउन्सर और उसके पढ़नेमें आश्चर्यजनक अंतर रहा । वार्ता समीच हो ली जगा कि उसके पीछे एक व्यक्तित्व आ गया जो अपने दिवातोंको सोचता है और उन्हें अभिव्यक्त करता है । ड्रेवरकी

बहिर्बो टूटी-फूटी थी कहीं-कहीं उसका समझना भी कठिन था फिर भी वास्तवि जड़मूठ आकर्षक आ गया। इस उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है कि रैडियो-वास्तवि महत्त्व स्वयं वास्तविका नहीं उसके वास्तविकारके व्यक्तित्वका होता है। यहाँ एक बात और कह दी जाय। कुछ लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ कि वास्तवि इसलिए गौरव हाती है कि वास्तविकार उन्हें आश्चर्यक इंगत पकते नहीं, इसलिए उन्हें एनाउन्समें कलाकारोंके सुमंस्कृत स्वरोंसे पढ़वाना चाहिए। यह कला उचित नहीं। ड्रेमरके उदाहरणसे ही यह स्पष्ट है कि वास्तवि स्वर और भाषाका उतना महत्त्व नहीं जिसका व्यक्तित्वका है। हमारे यहाँके वास्तविकी गौरवताका कारण यह है कि यहाँ व्यक्तित्वके पक्ष पर ध्यान दिया ही नहीं जाता। वास्तविकी गौरवताके दूसरे कारणोंकी खर्चा हम पहले अध्यायमें कर जाये हैं।

बच तीसरा प्रश्न। कहा जाता है एक व्यक्ति जो वास्तवि बनेस प्रसा पित करता है वह गौरव हाती है, इसलिए कई व्यक्तियोंके सहयोगसे वास्तविकी आश्चर्यक कामें प्रस्तुत करना चाहिए। एक व्यक्तिकी वास्तविकी हम प्रत्यक्ष वास्तवि कह सकते हैं। अंग्रेजीमें इसे 'स्ट्रेट टॉक [Straight Talk]' कहते हैं। अनेक व्यक्तियोंके सहयोगसे प्रसारित वास्तविकी मेंट वास्तवि [Interview] परिसंवाद [Symposium] आदि कहते हैं। मेंट-वास्तविमें प्रश्नकर्ता वास्तविकारसे प्रश्न पूछता जाता है और वास्तविकार प्रश्नोंके उत्तर देता है। परिसंवादमें कई व्यक्ति एक ही विषयपर अपने विचार प्रकट करते हैं। प्रश्न यह है कि रैडियो-माध्यमके लिए उपयुक्त क्या है प्रत्यक्ष वास्तवि वा मेंट-वास्तवि अथवा परिसंवाद ?

इस सम्बन्धमें स्मरण रखनेकी बात यह है कि रैडियो सामूहिक प्रेय नीयताका साधन है—प्रत्यक्ष साधन जिसका परिचय हम पहले दे चुके हैं। इसके माध्यमसे एक व्यक्ति अपनेमे दूर रहनेवाले हजारों श्रोताओंमे प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सकता है। रैडियो माध्यमकी सबसे बनी बन पती है। इसमें बकता-श्रोताका प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। कतिन इनक

विपरीत अत्यन्त वार्ताओं [भेंट-वार्ता आदि] में वार्ताकार एवं श्रोताओं-का प्रत्यक्ष सम्पर्क अङ्कित हो जाता है। इनमें वार्ताकार एवं श्रोताओंके बीचमें कोई अन्य व्यक्ति या जाते हैं, इनमें वार्ताकार अपने श्रोताओंसे सीधे कुछ नहीं कहता बल्कि प्रत्यक्ष श्रोताओंके माध्यमसे कहता है। इस दृष्टिसे सगता है कि रेडियो-माध्यमके लिए यदि सबसे उपयुक्त साहित्य-रूप कोई है तो वह प्रत्यक्ष रेडियो-वार्ता ही।

रेडियो-वार्ता-लेखनकी तैयारी

प्रसिद्ध बक्ता बुद्धो बिस्सनसे किसीने पूछा— आप अपने १० मिनटके मापनकी तैयारी कितने समयमें करते हैं ? बिस्सनने कहा—‘दो सप्ताह । प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न हुआ—‘बीर, एक घण्टेके मापनकी तैयारीमें कितना समय लगता है ?’ उत्तर मिला—‘एक सप्ताह । प्रश्नकर्त्ताकी जिज्ञासा घान्त नहीं हुई उन्हें फिर पूछा—‘दो घण्टेके मापनके लिए आपको कितना समय चाहिए ?’ उसके लिए तो मैं हर समय तैयार रहता हूँ । — बिस्सनका उत्तर था । ये उत्तर मजाक-बीसे कम सकते हैं, पर हैं नहीं । यन्मीरतासे सोचनेपर ज्ञात होता कि कम बर्बादमें अपने कर्म्मको अभि व्यक्त कर देना सबगुण ही बहुत कठिन काम है । बड़े मापनोंमें जगत्प्रसिद्ध विस्तार एवं आकृतियोंके लिए अवकाश हो सकता है, छोटे मापनोंमें नहीं । इसीलिए कम बर्बादके मापनोंके लिए पर्याप्त तैयारीकी आवश्यकता होती है । रेडियो-वार्ताओंकी बर्बाद भी सीमित ही होती है—पाँच मिनटसे लेकर बीस मिनटतक अधिक वार्ताओंकी बर्बाद वय मिनट होती है । एक वय मिनट की वार्ता लिखना धुक करनेके पड़े वार्ताकारको काफ़ी तैयारीकी अपेक्षा होती है । इस तैयारीका क्या तात्पर्य है, इसकी व्याख्या हम बादमें करेंगे—पहले विषयके सम्बन्धमें विचार कर लिया जाय । किन व्यक्तियोंको विषय विशेष-पर वार्ता देनेके लिए आकरुषवाणी द्वारा आमन्त्रित किया जाता है उनकी तैयारी तो उसके बाद ही घुट होती है, उन्हें विषयके लिए चिन्ता करने

की उलट नहीं पड़ती। लेकिन जो व्यक्ति आमन्त्रित नहीं किये जाते फिर भी यह अनुभव करते हैं कि उनमें रेडियो-भारतके उत्थान एवं प्रसारणकी समता है, उनकी तैयारी विषयके चुनावसे ही शुरू होती है।

प्रश्न यह है कि रेडियो-भारतके लिए कैसे विषय अधिक उपयुक्त होते हैं? आकाशवाणीके समय-समयपर प्रसारित कुछ बातोंमेंके विषय देखें जायें— भारतकी पुरानी राजनीति 'कसामें सैतिफता-असैतिफताका प्रश्न' 'बो भीनी यात्री' 'महायानमें विज्ञानवाद', 'कस्मीरका सौन्दर्य' महात्माजी के संस्मरण पुस्तकें जिनसे मैंने सीखा 'घासकी उपयोगिता' बापजी केडीके टोल तरीके 'बिरेस-यात्राके मेरे अनुभव'। इन्हें देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दुनियाका कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिसपर भारत में प्रसारित की जा सके पर ऐसा अनुमान करते समय आकाशवाणीके मूखपूर्व कामरेक्टर माँझ प्रोद्योगत सोमनाथ चिबका यह कथन स्मरण रखना चाहिए कि जिन विषयोंपर [आकाशवाणीके] भारतकार किये जा सकें उनमें से बहुतोंके विषय निरर्थक-उत्थानके अधिक उपयुक्त प्रकारके होते हैं। सचमुच जो विषय ऊपर किये गये हैं वे सभी रेडियो-भारतके उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। अब तक का विवेचन हो चुका है उससे स्पष्ट है कि रेडियो वैयक्तिकताकी अभिव्यक्ति सबसे सुन्दर माध्यम है। फलतः जिन विषयोंमें वैयक्तिकताकी अभिव्यक्ति अधिक से अधिक हो सके जिनमें आत्मिक अनुभवों एवं आत्मपरकताको व्यक्त करनेके लिए अधिक अवकाश रहे वे अम्याम्य विषयोंकी अपेक्षा निरर्थक ही रेडियोके अधिक उपयुक्त नहों जायेंगे। भारतकारके पास यदि कुछ ऐसे अनुभव हैं जो सबके लिए खबिबर हो सकते हैं यात्राके ऐसे संस्मरण हों जिनमें उसने स्वयं-विषयके सौन्दर्यको अपनी आँसुयि देखा है वहाँके लोगोंके रहन-सहनका अपनी दृष्टिसे अध्ययन किया हो ऐसे विषय हों जिनपर उसने अपनी दृष्टिसे विचार किया हो तो उन्हें वह अपनी भारतकार विषय बना सकता है। व्यक्तिगत दृष्टिकाली भारतकार अधिक लोगोंकी अपनी

और आकृष्ट कर सकेगी इसमें सन्देह नहीं। वीनेट इनकारते टीक ही कहा है—'सन्धी व्यक्तिगत वार्ता अधिक मोठामोठी खिचकर होती है, क्योंकि वह आत्मनिष्ठ होकर ही जाती है और उसमें वैयक्तिक रंग अधिक रहता है। वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ इन दोनों प्रकारकी वार्ताओंमें किसमें अधिक रोचकता होती है इसकी दृष्टि से वार्ताओंके कुछ प्रारम्भिक वाक्योंमें मिला जा सकता है। पहली वार्तावादी चीयक है 'कवि-सम्मेलन और मुद्यामरे' जिसमें वार्ताकार उदरुव भावसे प्रारम्भ करता है—

साथसाथने कठोरों धारमियोंके लिए यह मुमकिन बना गया है कि मज और गरम काहाईमें चुपचाप पकते रहें कथिन बदबका एक जास बसर उस बस्तु भी पकता है जब कई लोग जिनकी तादाव सैकड़ोंसे केकर हुआरों तक पहुँच जाती है एक अपहृ आकर मिला बैठें और बदबका बजाय चुपचाप बने से पढ़नेके अरीबके मुँहसे उधे सुनें। इस तरह पुरे मजमें एक फिजा पैदा हो जाती है और एक समी र्वैव जाता है। इसीलिए हमारी समानी दिग्दर्शियों मरबो कन्वरको फेजामे और संवारनेमें मुद्यामरों और कवि-सम्मेलनोंका बहुत बड़ा हिस्सा रहा है।

[रेडियो-संग्रह, पत्रद्वार विद्यम्बर १९३३]

दूसरी वार्तावादी चीयक है 'कवि-सम्मेलनोंके कद्दुए मीठे अनुभव' जिसमें एक कल्पप्रतिष्ठ कवि प्रारम्भ करता है—

'मैने प्रायः १९३२-३३ से कवि-सम्मेलनोंमें जाग सेना मुक किया। इन पन्धीत वर्षोंमें छेने-बड़े मिजाकर कोई ५०० कवि-सम्मेलनोंमें तो जाग से चुन्दा हुँवा। और इनमें मुझे तरह-तरहके अनुभव हुए—मुसब कु-बद मलौरबक और विविध भी। कुछ आपके सामन रख रहा हूँ। [इसके बाद अनुभव प्रारम्भ होते हैं]

[आकाशवाणी प्रसारिका पत्रद्वार-विद्यम्बर १९३७]

बहनेकी आवश्यकता नहीं कि ऐसी अनुभववाली वार्ताओंमें वार्ताकार का व्यक्तिगत भी महत्वपूर्ण होना चाहिए, जिसमें मोठामोठी खिच हो।

इन बातोंस यह न समझा जाय कि तथ्यप्रधान सूचनात्मक एवं शिक्षात्मक वार्ताओंका कोई महत्त्व ही नहीं है। अपने स्वानुपर उनका भी महत्त्व है। बहुत-से ऐसे विषय हैं जिनकी केवल सूचनाओंमें भी श्रोताओंकी रुचि होती है। ऐसा नहीं होता तो रेडियोके कोई समाचार क्यों सुनता ? कछुने जब अन्तरिक्षमें अपना राकेट छोड़ा तो लोगोंमें उसके प्रति काफ़ी रुचि रचि थी। लोग जानना चाहते थे कि पृथ्वीकी आकषण-शक्तिकी सीमाके बाहर कौसी राकेट कैसे जा सकत ? दूसरे ग्रहोंपर पहुँचनेकी क्या सम्भावनाएँ हैं ? ऐसे अनक तथ्यप्रधान विषय हैं जिनमें श्रोताओंकी दिलचस्पी हो सकती है। प्राचीन श्रोता यह जानना चाह सकते हैं कि जेटोंकी उत्पन्न किस प्रकार बढ़ सकती है। आपलौ तयौका क्या है उससे क्या जान हो सकते हैं। ऐसे तथ्यप्रधान सूचनात्मक विषय भी रेडियो-वार्ताके लिए चुने जा सकते हैं।

वार्ताके विषयका चुनाव करते समय वार्ताकारको एक और महत्त्वपूर्ण बातपर ध्यान रखना पड़ता है—यह किसके लिए वार्ता प्रसारित करनेकी सोच रहा है ? कौन-सा वह उनकी वार्ता सुनेगा ? उसकी वार्ता सामान्य वित्तित व्यक्तिओंके लिए हीनी बनवा अधिकवित्त प्राचीन श्रोताओंके लिए ? महिला श्रोताओंके लिए या बच्चोंके लिए ? स्कूलके छात्रोंके लिए या वयस्कोंके युवकोंके लिए ? इन सभी बर्गोंकी अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं इनकी अपनी-अपनी अभिरुचि होती है। एक ही वार्ता सभी बर्गोंके लिए नहीं ही सकती। 'कथामें नैतिकता-अनैतिकताके प्रश्न' पर कोई वार्ता प्राचीन श्रोताओंके लिए नहीं प्रसारित की जा सकती। इसी प्रकार 'विज्ञानवार पर कोई वार्ता न बच्चोंके कर्त्तव्यमें जा सकती है, न स्कूलोंके ही। विषयका चुनाव श्रोता-बर्गके मनोविज्ञान अभिरुचि आदिके आधारपर ही हो सकता है। वार्ताकारको साधना पड़ेगा कि वह जिन बर्गके लिए वार्ता देना चाहता है, उनकी रुचि किन विषयोंमें ही सकती है। उदाहरण के लिए, महिला-श्रोतावर्गकी रुचि विशेषतः अपनी घर-गृहस्त्री परिवार

वैज्ञानिक उपकरणोंके कामों आदिमें हाती है। इसी प्रकार बच्चोंकी रुचि भी बली जा सकती है। उनकी रुचि किन विषयोंमें होती है? इनपर कहने हैं—'मे समझता हूँ' उनकी रुचि लोचों और पशुमाके विषयमें हाती है। वे वस्तुओंका बर्चम ठक ठक नहीं सुनना चाहते जब तक उनका धनिष्ठ सम्बन्ध लोचों और पशुओंसे न हो। इसके साथ ही वे व्यक्तिगत साहसिक कर्मों अपनी पसन्दकी वस्तुओं और व्यावहारिक उपयोगवाले विज्ञान सम्बन्धी सभी विषयोंको चाहते हैं। बार्ताकारको इन सभी बातोंका ध्यान रखना पड़ता है।

आकाशवाणीके किन्से केन्द्रके लिए बार्ता लिखते समय बार्ताकारको आकाशवाणीकी सीमाओंसे भी परिचित रहना आवश्यक है। सभी प्रसारण केन्द्रोंकी अपनी नीतिमय नीचाय होती है आकाशवाणीकी भी है। आकाशवाणीमें राजनीतिक धार्मिक आदि विवादास्पद विषयोंके लिए स्थान नहीं है। इसके प्रसारित होनेवासी बातें किन्सी भी एस अंशसे बचना होता है, जिसमें किन्सी व्यक्ति, सम्प्रदाय धर्म, संस्था मय आदिपर किन्सी भी प्रकार से आक्षेप किया गया हो।

विषय निश्चित हो जानके बाद ही बार्ता-लेखनकी तैयारी शुरू होती है। हम विषयमें पहला काम है सामग्री-सकलन। बार्ताकारसे पाठ अपनी बातके लिए पर्याप्त सामग्रीका रहना अत्यावश्यक है। उसके अभावम सकल बार्ताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह सही है कि रेडियो बार्ताकी सौमित्र अवधिमें बहुत अधिक सामग्री प्रस्तुत नहीं की जा सकती रेडियो-बार्ताकारसे उसकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती पर उससे जो अपेक्षा की जाती है, वह सामग्रीकी सम्पन्नतापर ही निर्भर है। जब हाथमें पर्याप्त सामग्री रहे, तभी उनमेंसे अपने उपयोगक लक्ष्य चुने जा सकते हैं और उनके आधारपर अपना दृष्टिकोण निश्चित किया जा सकता है। इसीलिए सभी रेडियो-विषय-विशेषज्ञ अधिक सामग्री जुटानेपर जाग रहें हैं। जिन व्यक्तियोंको रेडियो-बार्ता देनेके लिए आमंत्रित किया जाता है वे

सामान्यतः अपने विषयके विशेषज्ञ होते हैं, उनके पास सामग्रीकी कमी नहीं रहती। लेकिन जो विशेषज्ञ नहीं हैं उन्हें पुस्तक आदिकी कारण कमी पड़ती है।

तत्पश्चात् वार्ताओंमें विभिन्न दृष्टिकोणोंसे सामग्रीका संकलन अवैधित है। विभिन्न विद्वान् विषय-विशेषके सम्बन्धमें क्या विचार रखते हैं यह ज्ञान भी उचित है। तत्पश्चात् विद्वान् प्रामाणिक हों तबसे श्रोताओंको उनमें किसी प्रकारके संशयके लिए अवकाश न रहे। वार्तामें यदि उद्धरण दिमें आवें तो वे भी पुष्ट सुत्र और प्रामाणिक हों। रेडियो-वार्ताओंमें इस बातोंपर विशेष ध्यान होता है।

तत्पश्चात् वार्ता-विषयकी विद्यामें केवल एक अवयव है वास्तविक तैयारी जो इसके बाद शुरू होती है। यह पहले कहा जा चुका है कि रेडियो-श्रोता केवल तत्पश्चात् और आदि नहीं चाहता वह अपने वार्ताकारसे इनसे कुछ अधिक चाहता है वह कुछ ऐसी वस्तु चाहता है जो उसे नहीं भी निश्चित रूपमें उपलब्ध न हो सके। वह केवलका दृष्टिकोण चाहता है, वह वार्ताकारका स्वतंत्रत्व चाहता है और इसे बूझने और बेतुका प्रयत्न करना ही वास्तविक तैयारी है। इसके लिए चिन्तन-यत्नकी आवश्यकता होती है। सफल रेडियो-वार्ताकारके व्यक्तिके आचारपर जैनेट इन्फ्लेन्स रहते हैं कि उनमें जो बातें बहुत ही स्पष्ट रूपमें दिखानी पड़ती हैं। उनमें वह व्यक्तिके वैयक्तिक पुनः प्रचुर मात्रामें रहता है जिसे हम व्यक्तित्व कहते हैं। लेकिन उनमें इससे कुछ अधिक भी होता है। यदि आप उनसे वार्ताओंकी आलोचनाकी तरह मुझे तात्पर्य पायेंगे कि उन्हें अपने आभेदकी कर-रेखाके धारोंमें मोचनेमें काफी सावधानी बरती है। यही सोचना वास्तविक तैयारी है। डेल वार्ताकी भाषणकी तैयारीके सम्बन्धमें लिखते हैं— तैयारीका अर्थ है—सोचना चिन्तन करना जो विचार भाषणो सबसे अधिक आह्वय करते हैं उनका चुनाव करना, उन्हें समझाना उन्हें एक निश्चित योजनामें रचना। इसके बिना कोई भी वार्ता चाहे वह किसी भी

प्रकारकी क्मों न हो सफल नहीं हो सकती । प्रसिद्ध बक्ताओंके अनुभव इनकी छरप्यताको सिद्ध करते हैं । प्रत्यक्ष भाषणोंके लिए भी इस प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता होती है, रेडियो-वार्ताके लिए भी ।

प्रसिद्ध बक्ता बुद्धो बिस्सनका ही उदाहरण लिया जाय । भाषण तैयार करनेकी अपनी प्रक्रियाके सम्बन्धमें वे कहते हैं—'मैं कुछ ऐसी वार्ताकी मूर्त्तसे शुरु करता हूँ जिन्हें मैं अपने भाषणमें रखना चाहता हूँ उन्हें उनके पारस्परिक स्वामन्त्रिक सम्बन्धोंकी देखते हुए अपने मनमें सज्जाता हूँ पानी में बस्तुकी बस्तियोंकी एक साथ संगठित करता हूँ । एक दूसरे बक्ता बनेकडोखर हेमिस्टनका अनुभव भी देखा जा सकता है वे कहते हैं—'सोच मुझे प्रतिभावात् होनेका ज्ये बेते है, केकिन मुझमें जो प्रतिभा है, वह इस बातमें है जब मेरे पास कोई विषय होता है तो मैं उसका सब धरप्ययन करता हूँ । दिन-रात वह मेरे सामने रहता है । मैं उसके सभी पहलुओंको खोजता हूँ । मेरा मस्तिष्क उससे छा जाता है ।

इस प्रकारके चिन्तनकी अपेक्षा इत्यरिप्य होती है कि मोताओंके मनपर अपेक्षित प्रभाव पड़ सके और वार्ताकार अपने प्रयोजनको सिद्ध कर सके । बीजा कि डेल कार्नेगीने कहा है 'प्रत्येक भाषण एक यात्रा है, जिसका एक उद्देश्य होता है, और जिसका रास्ता पहलेसे ही निश्चित कर लेना चाहिए ।' रेडियो-वार्ताके सम्बन्धमें भी यह बात बिलकुल सही है । प्रत्येक रेडियो-वार्ताका एक प्रयोजन होता है, और उसकी सिद्धिके लिए उसकी एक निश्चित रू-रेखा होनी चाहिए ।

पहले हम प्रयोजनकी ही बात लें । कुछ वार्ताएँ अपने मोताओंका केवल मनोरंजन करना चाहती हैं, कुछ अपने मोताओंको अपने लक्ष्योंसे प्रभावित करना चाहती हैं । कुछ कियो कठिन विषयकी व्याख्यासे अपने मोताओंको परिचित करना चाहती हैं, कुछ मोताओंको किसी कार्यके लिए सहित्य करना चाहती हैं । उदाहरणके लिए, यदि वार्ताकार 'गण बढाना भी एक कला है' विषयपर वार्ता दे रहा है, तो उसका एक मात्र

नहीं है। भूमिकात्मक प्रारम्भ किसी वाताईके निश्चित रूपसे बसकस बना देता है। निबन्धोंके प्रारम्भमें जिस प्रकार भूमिकाएँ लिखी जाती हैं, उस प्रकार वाताईमें नहीं लिखी जा सकती। पर हमारे यहाँकी रेडियो-वाताईमें निबन्धकी टीचीसे प्रभावित होनेके कारण अधिकतर भूमिकाओंसे ही प्रारम्भ होती है। कहीं-कहीं तो ये भूमिकाएँ बहुत बड़ी और लम्बी होती हैं और वाताईके मूक विषयसे उनका विशेष सम्बन्ध भी नहीं होता। उदाहरणके लिए कुछ वाताईओंके प्रारम्भ देते जा सकते हैं। 'पुराणोंमें प्रतीक शीघ्र वाताईका प्रारम्भ इस प्रकार है

'भारतवर्षका पुराण साहित्य एक अत्यन्त अद्भुत और रहस्यमय साहित्य है। इसके सम्बन्धमें विद्वानोंकी अनेक विद्वत् धारणाएँ हैं। सभी धारणाओंकी पुष्टिके लिए पुराणोंमें प्रमाण मिल जाते हैं। एक ओर तो स्वामी-दयानन्द सरस्वती-जैसे पण्डितोंका यह मत है कि पुराण कथोक्त-कल्पित मगधकृत अनीतिहासिक, झूठी और बहुधा अस्वीय कहानियोंके संग्रह हैं। बावदात्म्य विद्वानोंके मतमें भी पुराणोंमें केवल असम्भ्य और मानवजातिके शैशवकालके समयमें प्रचलित धार्मिक काल्पनिक कहानियाँ हैं। प्रायः सभी देवोंमें इस प्रकारकी कहानियाँ प्रचलित हैं और वे प्राचीन कालसे चली जाती हैं। इन कहानियोंका जागार आदिम मनुष्योंकी सृष्टि, ईश्वर और परलोक आदि सम्बन्धी स्फुट विचार हैं। [१५ मिनटकी बातचीत समाप्त चार मिनट तक पुराणोंकी चर्चा वाताईकर

‘भारतमें स्वाधीनता-आन्दोलनके कारण स्त्रियोंमें भारी बागुमि जायी । केवल जमी तक उनकी सामान्य स्थिति पिछड़ी हुई है । सरोजिनी नायडू, निरकल्पमी पंडित राजकुमारी अमृतकौर आदि अपवाद हैं । हमारे देसमें स्त्रियोंको जानूती बहुत है । लेकिन उनकी शिक्षा आर्थिक स्तर जमी बहुत असुविधाजनक है । प्रत्येक अवसर लेनीसे हो रही है, और हमें आधा है कि पीछे ही भारतमें भी स्त्रियोंकी उन्नति बेगसे होने लगेगी ।

स्त्रियोंके लिए शिक्षा विकिरण आधिके क्षेत्र विशेष रूपसे अनुपुक्त है । परन्तु पत्रकारिता एक ऐसा क्षेत्र है, जो आसानीसे अपनाया जा सकता है, क्योंकि हममें पौरुषकी आवश्यकता कम है । नैतिक छाहसमें तो स्त्रियाँ किसी प्रकार भी पुस्तोसे पीछे नहीं हैं । पत्रकारितामें स्त्रियोंको सफलता भी काशी मिली है ।

[प्रसारिका बुलाई-दिसम्बर १९३३]

इस तरहके सैकड़ों उदाहरण बिये जा सकते हैं । रेडियो-वार्तामें इस प्रकारके भूमिकारणक प्रारम्भको अनुपयुक्तताका एक कारण यह भी है कि रेडियो-वार्ताकी अवधि सीमित होती है । अथवा कोई वार्ता १० मिनटकी है तो उसे प्रसारणके समय कभी भी ११ मिनटका समय नहीं दिया जा सकता । जब १० मिनटके भीतर ही समाप्त होता है । पत्र-पत्रिकाओंमें मुद्रित निबन्धोंके लिए इतना कठिन बन्धन नहीं होता । अतः रेडियो-वार्तामें भूमिका देनेका अवसर है समयका दुरुपयोग । वार्ताकारको अपनी सीमित अवधि का अधिकारिक उपयोग करना है, और इसके लिए उसे भूमिकामें अपना बहुमूल्य समय गह नहीं करना चाहिए । समयका यह प्रस्न भौताओं-की बुद्धि भी महत्व रखता है । आज हम सभी गतिके युगमें हैं, प्रारम्भिक युगमें लोगोंके जीवनमें जो अवकाश था वह आधुनिक युगके जीवनमें नहीं रह गया है । समयकी चिन्ता सबको लगी रहती है । ऐसी स्थितिमें भौता भी चाहता है कि वार्ताकार लम्बी-चौड़ी भूमिका न बोलें बल्कि उसे जो कुछ कहना है, उसे बड़ बानी और बिलकुल सीधे बतसे बहै । ‘पत्रिक

स्वीडिश और विभिन्न देशों में पुस्तकके लेखक सिद्धनी एक विषयने बहुत ठीक कहा है कि 'भाषण लिखनेमें कोई रचना लिखनेकी तरह ही, हम लोग पीछे मुड़कर साधारणतः पहले पैदावाक्यको निकाल दे सकते हैं। मान जहाँ अपनी भूमिकाका अन्त समझते हैं वहींसे प्रारम्भ कीजिए। सबकुछ अपने विषयमें सहसा प्रवेश कर जाना किठना आकषक होता है, यह सर्वोच्च धीरे-धीरे बाल्ताकी पहले उद्बुध की सभी संस्थितियोंमें फिरसे देखा जा सकता है।

'यह सर्वोच्च विचार है क्या? पहली बात यह समझ लेनी चाहिये कि यह कोई वाद नहीं है, बस कि कई प्रकारके वाद मान्य प्रचलित हैं। यह एक मुक्त विचार है। महारानीने स्वयं और देकर कहा था कि उन्होंने किसी भी प्रकारके वादकी रक्षयता नहीं की है। वह तो केवल सत्यकी खोजमें सचे रहें थे। इसी शोधमें उन्हें बहुधा भ्रमवा सर्वोच्चका विचार मिला था।

भूमिकात्मक प्रारम्भको निकाल देनेसे कुछ बाल्ताएँ किस प्रकार आकर्षक हो जा सकती हैं, इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक उदाहरण यहाँ 'प्रेमचन्दकी जय' धीरे-धीरे बाल्ताकी है।

'जननदायी प्रेमचन्दकी जय। सबकुछ से जननदायी थे। बिना कुछ पास हुए भी दिये ही पये और इस निरन्तर हालमें कहीं भी उठ सप्रतिष्ठी रहता था कड़वाहट नहीं। उचाई यह है कि प्रेमचन्द अपने समयके बहुत बड़े कथाकार थे वर सचसे भी बड़े मनुष्य थे। समाजकी उठ खेपाएँ भी दिये जाना और अपनेको कठुतासे बचाये रखना किसी साधारण मनुष्यके लिए सम्भव ही नहीं था।

उनकी बातें बुढ़ाईयोंकी लपन छपाट बीवारके बार-बार मनुष्यमें बैचलका दर्शन करनेकी जाती थीं। एक दिन मैंने उनसे पूछा—'कहनेकी तो आप करते हैं कि वेद स्तरमें विश्वास नहीं है मैं नास्तिक हूँ पर अपने साहित्यमें बार-बार आपका प्रयत्न है मनुष्यमें देवत्वका दर्शन, प्रचार और उन्नत। प्रश्न यह क्या बात है?'

अपने हास सहजोंमें व बोले—'जनाब । ईश्वरमें विश्वास करनेकी व करत ही उन्हें पढ़ती है जो आदमीमें देवत्वका ब्रह्म नहीं कर सकते । यह ठो अनुभवकी बात है, किसी चमत्कारकी नहीं कि बुरा आदमी भी बिकसुप्त बुरा नहीं होता । उसमें कहीं-न-कहीं देवत्व अवश्य छिपा रहता है । मैं अपनी क्लमसे इस सत्यको कहीं-कहीं उभार दिया है, और कहीं-कहीं प्रकाशित कर दिया है ।

प्रमत्तत्वकी अपने इसी मूळ दृष्टिकोणके कारण बुरे आदमियोंकी भी बुराई नहीं करते ये या यूँ कहें कि बुरे आदमियोंकी बुराईको छह आठे ये पी आठे ये पचा आठे ये।

[प्रसारिका बुधवार ११११]

अगर यह वार्ता यहीसे प्रारम्भ होती कि एक दिन मैंने प्रेमचन्दजीसे पूछा— और दुखमें कहीं गयीं वार्ते कहीं बाबमें आ जाती तो प्रारम्भ वाक्य कुछ और आकर्षक हो जाता । मझन् व्यक्तिमें संस्मरणोंमें जो आश्रय होता है वह उनकी बीबन-वचनमें नहीं उनके गुणोंके सम्बन्ध में लिखे गये निबन्धोंमें भी नहीं । अतः किसी रोचक संस्मरणसे वार्ताका प्रारम्भकर उसमें ओठाओंकी सचि उत्पन्न की जा सकती है । वार्ताके प्रारम्भका उद्देश्य यही होता है कि उससे ओठाओंके मनमें वार्ताके अर्थके अर्थोंके प्रति सचि एवं जिज्ञासा बने । आकाशवाणी प्रसारिका [अप्रैल-जून १९५६] में एक वार्ता है—'बापूका पत्र-साहित्य' । इसमें बापूके कुछ बड़े सुन्दर पत्र उद्धृत किये गये हैं जिनमें किसीकी भी सचि हो सकती है, केवल वार्ताकार प्रारम्भ करते हैं इस प्रकार—

पत्र लेखन एक कला है । गौरीजी इस कलामें बहुत निपुण थे । उनके बहुविध पत्रोंकी संख्या हजारों तक पहुँचती है । अकेली भीष बहुत, उनकी एक प्रमाण यूरोपियन शिष्या के पास ६०० से अधिक उनके पत्र हैं । ऐसे संकटों व्यक्ति भारतमें तथा बीसियों विदेशोंमें होंगे जिन्हें वे समय-समयपर बड़े आससे पत्र लिखा करते थे । उन्होंने रामसराय और

दूधरे बेंसोंके राजनयनों तथा अन्य उच्च परस्व राजनयनोंसे बनाकर भारतके एक साधारण कामकर्ता तक को पत्र लिखे हैं। आदि-आदि।

ऐसी चर्चा कुछ देर तक चलती है, उसके बाद पत्र उद्धृत किये जाते हैं। इस चर्चासे थोड़ा मही समझेगा कि वार्ताकार बापूके पत्र-साहित्यका इसी प्रकार परिचय देंगे वार्ताका शीर्षक भी इसी बातकी ओर संकेत करता है। यदि वार्ताका शीर्षक 'बापूके कुछ पत्र' या 'बापूके कुछ महत्वपूर्ण पत्र' होता तो थोड़ा यह भासा बनाये रख सकता कि प्रारम्भिक चर्चाके बाद बापूके पत्र उद्धृत किये जायेंगे। ऐसी स्थितिमें थोठामोंकी जिज्ञासा बनाये रखनेके लिए वार्ता बापूके किसी पत्रसे ही प्रारम्भ की जा सकती थी। मन्ना वार्ताकार प्रारम्भमें ही कह दे सकते थे— इसके पहले कि मैं बापूके कुछ महत्वपूर्ण पत्रोंके अंश आपके सामने रखूँ, मैं आपसे यह कहूँ कि बापू पत्र-लेखन-कलामें बहुत निपुण थे।

प्रेमचन्दके साथ हुए वार्तालाप या बापूके लिखे किसी पत्रके अंशसे वार्ता प्रारम्भ करनेका अर्थ यह है कि उक्त नाटकीय अंशसे प्रारम्भ किया जाय। नाटकीयतामें स्वभावतः आकर्षण होता है और रेडियो-वार्ताकार चाहे तो इस नाटकीय शैलीका उपयोग सहज ही कर सकता है। हाँ यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि नाटकीयता नहीं अतिनाटकीयतामें न बदल जाय। कभी-कभी यह अतिनाटकीयता बहुत प्रभावोत्पादक होती है, कभी-कभी हास्यास्पद भी हो जाती है। अतिनाटकीयताका एक उदाहरण अमरीकी वार्ताकार जे. लांसले दिया जा सकता है। अमरीकी सिनेटके सदस्य जे. लांसले राजनीतिक जीवनमें उच्च स्थान प्राप्त करनेमें रेडियोके माध्यमका बड़ा सहारा लिया था। वह बड़े ही आरतीय सिन्धु नाटकीय अंशसे अपने थोठामोंसे बातें करता था। उसकी एक वार्ताका प्रारम्भ इस प्रकार था

'मित्रो यह जे. पी. लांसले बोल रहा है। मुझे कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण रहस्य आपके सामने खोलने हैं लेकिन मैं ऐसा करने, इसके पहले मैं

चाहता हूँ कि आप टेलीफोनके पास जायें और अपने पाँच मित्रोंको कहें कि वे भी सुनें। मैं चार-पाँच मिनट तक यों ही बातें करता रहूँगा बिना कोई विशेष बात कहे ही, इसलिये आप टेलीफोनके पास जाएँ, और अपने मित्रोंसे कहें बीबिए कि वे जाग रेडियोपर बोल रहा है।

इसमें समझें नहीं कि यह एक आकर्षक प्रारम्भ है, पर आकाशवाणीमें ऐसी नाटकीयताके लिये सम्भवतः बहुत कम स्थान है। फिर भी अपनी सीमामें ही नाटकीयताका उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणके लिये, किसी व्यक्तिका परिचय देते समय यह आवश्यक नहीं कि उसके नामकी बातसे ही वार्ता प्रारम्भ की जाय वैसे कि इन वार्ताओंमें किया गया है।

'स्वामी रामकृष्ण परमहंसका जन्म बंगाल प्रान्तके हुगली जिलेमें १७ अक्टूबर सन् १८३६ ई० बुधवारको कामारपुकर नामक गाँवमें हुआ था। यह गाँव कलकत्तासे लगभग पचास मीलकी दूरीपर पश्चिमकी दिशामें है। इनका जन्म नाम गदाधर था।

[प्रसारिका बुलाई-दिसम्बर १९५५]

और

'शुद्धि दयानन्दका जन्म काठियावाड़में मोरबी राज्यके एक कस्बेमें लगभग संवत् १८८१ अर्थात् सन् १८२४ ई० में हुआ था। उनका जन्म नाम मूसरकर था। उस समय भारतकी सामाजिक अवस्था बड़ी दौचालीय थी। आदि

[प्रसारिका, बुलाई-दिसम्बर १९५५]

इन महान् व्यक्तियोंके जीवनमें बहुत-सी महत्वपूर्ण एवं आकर्षक घटनाएँ घटी हैं जिनकी वृत्ति वार्ताएँ प्रारम्भ की जा सकती हैं। कुछ ऐसी घटनाओंकी वृत्ति पातलि जाते चमकर हुई भी है।

प्रारम्भकी आकषक बनानके और भी कई उपाय हैं। वार्ता किसी

हास्य-प्रधान प्रसंग या जन्तसे मुक की या सकठी है । 'बीनेका सबोअ' धीरेक इस बाताका प्रारम्भ देखिए

'एक साहब पिटते भी जा रहे थे और हँसते भी जा रहे थे और जिस ऊँच बैठहाया पिटते थे उस ही ऊँच बैठहाया हँसते थे । रवाना हाल करनेपर साहब नीमूअने बताया कि पीटनेबास्य एकठ बावपीको पीट रहा था । इसलिये उसकी हिमाइतसे कुछ बन्वीज हो रहे थे । तो हजरत यह भी रहा पिटनेक्य सलीका ।

बस रहा बीनेका सबीका । इसका कठीअय भी मुन कीलिये । वो बावपी एक ही कोठरीमें बस थे । रात बड़ी ठारीक और मयानक भी बीर तूअन सिहतर था । तूअन यमा तो दोनों कोठरीके दरवाजेपर बाये और सललसिं मारिने लगे । एक यह कहठा हुआ बापस गया—'उठ किस बलाकी ठारीकी है । दूबरा बहीं बड़ा रहा और अपने साथीसे बोला—'दिना एक ठारा भी बसक रहा है । कनीअा तो तारम हो गया, ककिन कहनेबासे कहते हैं कि बात धारम नहीं हुई, बसिक इसमें बीनेअ एक सलीका एया हुआ है । बसर इस कठीअेको बाप या न खरें या उसके ज्ञायक न हों तो मारिए गोली इस तारे क्रिस्तेको ।

किमी कामकी सूची और सूबमुरतोसे करना सलीका है । नुँ भी यह कीलिये तो कोई मुबायअ नहों कि किनी बातको इस तरह कहना या करना कि उसका इक बस हा बाये सलीका है । इस विनापर ये कुछ ऐसा समझता हूँ कि यम इतकाक बाज जकूम सबका बहुत कुछ मदार सलीके और शायकलीपर है । बापकी इस विस्कीके एक मधूर तारवानी सलीअक कठीअ मधूर है जिनसे एक साहबने दर्वाअत किया कि 'हमीम साहब आपके इलाकसे भी लोप मरते हैं और कनां बातगाईके इलाकसे भी मरते हैं फिर बाप बीनेमें फरक क्या रहा ?' हमीम साहबने अरमाया—'कोई फरक नहीं । बाज सिर्फ इतनी है कि यह बड़ का बेअापत पान

केटा है, मैं क्रायसे के जान केटा हूँ । यह क्रायदा भी सलीके ही का दूसरा नाम है ?'

[रेडियो संघः अक्टूबर दिसम्बर १९३३]

किन्ती उदरसे भी वास्तिका प्रारम्भ आकर्षण बनाया जा सकता है । किसी कविताकी वो चुमती हुई पंक्तियाँ उद्बृथ कर प्रारम्भमें समझकर उत्पन्न क्रिया जा सकता है । कवियों और साहित्यकारोंपर वास्तिकाँ बेते समय तो इसके लिए बहुत ही अवकाश रहता है, पर उसका पर्याप्त उपयोग नहीं किया जाता । उदरबाजे प्रारम्भके वो उदाहरण यहाँ देखे जा सकते हैं । हिन्दीमें 'ध्वंय' शीर्षक वास्तिका प्रारम्भ है

'नहि पदाग नहि मधुर मधु,

नहि विकास एहि काल ।

सत्ये कली ही सी बँप्यो,

घामे कौन हुआल ॥

मिहारीकी इन पंक्तियोंमें छिपे ध्वंयने कर्तव्य-विमुख राजाको बिना आवाज पहुँचाने सक्षम कर बना दिया था । ध्वंय उस आबुकी तरह है जो अगर चोट पहुँचाता है तो इसीलिए कि हमें सचेत करना चाहता है । ध्वंय सचेत न करे, बगाने नहीं सिर्फ चोट ही पहुँचाने आवाज ही करे तो वह ध्वंय नहीं है, ध्वंय-सी समनेबाजी वह चीज शकी है ।'

[रेडियो-संघः अक्टूबर-दिसम्बर १९३३]

दूसरा उदाहरण 'जननी जगमूमिश्च स्वर्गादपि परोपरी वास्तिका है

'महाकवि इन्द्रालका एक पीठ भाऊमें बहुत प्रचलित है—

तारे जहाँसे घबड़ा हिन्दोस्ता हमारा ।

हम बुझनुमे हैं उसको वह बुझिस्ता हमारा ॥

किन्तु इन्द्रालके बहुत पहले यह भाव बंगालमें जन्मा था जहाँ

महाकवि बंकिमचन्द्रने भारत माताको कल्पना, सचमुच ही माता बचना महाबेबीके रूपमें की और देशको बन्दे मातरमुका चापरब-यन्त्र बेटे हुए समझीने बड़ ठोके परासकसे एक नयी स्तुतिका वाग किया—सुझतां उरुमां मलयवधरीतलां... आदि-आदि ।

[प्रसारिका, जनवरी-मास १९३६]

कविताओंके अतिरिक्त किसी महापुरुष या विद्वान्के उद्धरणसे भी वार्ताएँ प्रारम्भ की जा सकती हैं । किसी महापुरुषकी अन्तिम वार्ताका हीम्वर्य भी बढ़ता है । उसमें अन्तिम भी जाती है, उसका आकर्षण भी बढ़ता है । 'बार्ड अरन्डेल' शीर्षक इस वार्ताका प्रारम्भ देखिए

'महामात्रीने एक बार मुझसे कहा था कि अंग्रेज तो योर्कियोंकी सन्तान मान्य होते हैं । उनकी प्रबन्ध-मदुता नियमित और व्यवस्थित जीवन शर्क-शक्तता किसी बीपीसे कम नहीं । वह एक कसर है कि उनका क्या प्रयत्न दूरतोंको घोषण करनेके लिए होता है । दूसरे मान्योम में उनको कभी-कभी सचको सन्तान कहा करता है । राजन भी बड़ा विद्वान् और तपस्वी था । मन्त्रा पासक और संयत्नकर्ता था । परन्तु वह राजन इसलिए कहलाया कि दूरतोंको सताता था । फिर भी अंग्रेजोंके मुनोंका भी नकल है और उनके मुकाबिलेमें कई बार हिन्दुस्तानियोंको पढ़िया पाता है ।

'स्वर्गीय बार्ड अरन्डेलका क्या नाम आते ही महामात्रीके पूर्वजिन बचन मात्र जा जाते हैं । ऊँचे इतना ही है कि अंग्रेजोंमें दूरतोंको घोषण करनेकी जो बुद्धि पायी जाती है उससे भी अरन्डेल बिलकुल बरी से । विद्वान् तो वे ही सिद्धिगत उनकी बुद्धिमें विद्वत्ताका बर्दा जीवन-शुद्धि और जीवन सिद्धिके मुकाबिलेमें कम था । उनकी इस विवेकतासे उन्हें कोरा विद्वान् न रहने केकर नियोजनी पीसी बड़ा-बिद्या सम्बन्धी संस्थाका अविष्टता बना दिया ।

[रेडियो-सप्तह अक्टूबर-दिसम्बर १९३३]

वार्ताकी शीर्षक बहानियोंने भी प्रारम्भ किया जा सकता है । इन

सम्बन्धमें भी यही ध्यान रखना होता है कि कृतानी प्रासंगिक हो और वास्तविक मूल विषयसे उत्तका अनिष्ट सम्बन्ध हो। 'समताका सिद्धान्त'—वैसे पम्मीर विषयका यह आकर्षक प्रारम्भ बसनीय है।

'विधाताने अब सुबनका काम शुरू किया ठर समताका सिद्धान्त ही उत्तका मापबन्ध था। एक आदिवासी लोक-कथाके अनुसार सबसे पहले केवल चार योगियोंमें प्राणी-बन्धकी रचना हुई—आदमी बैल कुत्ता और घुन्टू।

आदमीके सुपुर्ब काम हुआ प्रकाशकी क्षमियोंका आह्वान और ईश्वर का गुणमान।

बैलके सुपुर्ब हुआ प्राणी-बन्धका सेवा-भार।

कुत्तेके सुपुर्ब हुआ प्राणी-बन्धकी रक्षवासी।

और अन्यकारकी क्षमियोंपर निमाह रखनेका काम घुन्टूको सौंपा गया।

परमात्माके दरबारमें उस बल्लशक सिर्फ एक ठराबू भी और वह भी समताकी। चारोंकी ठकती हुई और ईश्वरीय आदेश सुना दिया गया तुम चारोंको चालीस चालीस बरसकी जीवन-अवधि दी जाती है।

आदेश सुनकर चारोंका मन उदास हो गया। आदमीने सोचा चालीस बरसमें तो उसके बबानीके होसके भी पूर न हो सकेंगे। मगर सबसे समझदार प्राणी हीनेके माते वह बीरबका बूट पीकर आमोस रहा।

परन्तु बैलसे न रहा गया। उसकी बोगों बाँझासे टप-टप आँसू गिरने लगे। आरजू-भरे स्वरमें बोला—हे दयाके झोठ। चालीस बरसतक निरन्तर विस्ते रहनेकी मरे बन्धर क्षमि नहीं। मुझे केवल बीस वर्षकी आयु चाहिए। मगर परमात्माकी बन्धीयकी वापसीका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। ऐसे पाठे बल्लपर आदमी बैलके काम आया। उसने बिलती की—बैलकी आयुके बाकी बीस वर्ष मैं सह्य सेनेको तैयार हूँ। इस तरह मनुष्यकी आयु चालीसठे साठ वर्ष हो गयी।

कुसेफी बारी जाम्बी तो उसने केवल अपनी जाम्बुके बारह वर्ष बाद
जाइनेने कुसेके अट्टाहस बंध भी अपनी जाम्बुके जुड़ा लिये ।

अन्तमें पुम्बुसे पूछा गया । वह भी बड़ी कठिनाईसे जाम्बुके बीस क
केनेको राजी हुआ । जीवनकी अतृप्त आत्मा जिये मनुष्यने पुम्बुके विरुद्ध
बीस बंध भी माँग लिये ।

अन्तिम क्रममें जाइनीजी जीवन-अवधि १०८ वर्ष हो गयी, बीसको बीस
बाद कुसेफी बारह वर्ष और पुम्बुकी बीस वर्ष । चारों प्राणी ईश्वरको बन्ध
बाद देते हुए पर्यंतोक्तको मौट धामे ।

छद्मजीव जो जगजाम्बु निष्कट बैठी हुई थी चारों प्राणियोंके विरा
होनेके बाद जगजाम्बुसे कहा—जगजम्बु, जाइनीने तो अपने सूर्यपरकीमें समता
की ईश्वरीय मुका संव कर डाली । मगर रहा वह नष्टमें ।

विवाता बोले—सम्मी समता है, जाइनी इमी प्रकृतज्जुहीनें तीनों
प्राणियोंकी जीवन-अवधि के समान है । जाइनी तो वह केवल जालीस बने
तक ही रहेगा । जाइनीय बंधके बाद उसका जीवन बैठके समान होगा ।
परिवारके अरथ-योगभके लिए पितृता ही उसका ध्येय हीका । छठ बंधके
बाद वह कुसेफी तरह बरकी रत्नबाजी करेगा और अट्टासी बंधके बाद वह
पुम्बुकी तरह जाइनीरके राजा समकी ओर ताकता रहेगा । कइनी क्या
बचमुच जाइनी नष्टमें रहा ?

जाइम पुनसे देकर अब तक अब-अब मनुष्यकी रबाध बुद्धिनें बड़े
समस्याका प्रबुद्ध माप छोड़नेके लिए प्रेरित किया सब-सब मानव-जातिको
छोकरें ताकर लड़-लुहान हीना पड़ा ।

[प्रकाशिका जनवरी-मास १९२६]

प्रारम्भ बहुत आकर्षक है इसमें सन्देह नहीं कीं वह विक्रामन को या
सकती है कि अपने मूल विषयपर जानेमें कुछ देर की गयी है ।

व्यक्तिगत बचनि भी वास्तविक प्रारम्भ होकर वास्तविक आकर्षण बना
है । हम पहले यह देख चुके हैं कि रेडियो-वार्ता वैयक्तिकताकी ही समा

है, बार्ताकारके धीबनकी अभिव्यक्तिसे इसकी विशेषता बढती है। 'प्रसा रिका [बुधार्ई-दिसम्बर १९५५] में प्रकाशित दो बार्तामैकि प्रारम्भ इस वृष्टिसे देखे जा सकते हैं

१— एक समय था जब मैं सरकारी नौकरी और साहित्य-सृजनको परस्पर विरोधी काम मानता था। सरकारी नौकरी करनेसे पहले मैं एक स्वतन्त्र पत्रकार था और साक्षरमें ही लिखनेधर रोग मुझे ब्य गया था।

[मेरा व्यवसाय और साहित्य-सृजन]

२— 'मैं बिस्वी पहुँची मरतबा सन् १९१६ में आया। मेरे स्कूलका सेण्ट स्टीफनस हाई स्कूलसे हाँकीका मैच था। मेरे बचाबार भाई टीममें थे। मैं एक्सट्राबमें सामिल कर लिया गया ठाकि मैं भी बिस्वी देख सकूँ। डाक्टर बन्सारी मरहूमके एक बडीब भी टीममें सामिल थे। इनके बरिये डाक्टर बन्सारीके यहाँ रहनका इन्तबाम हो गया। मुझे ठीक याद नहीं कि मैं बिस्वीमें क्या-क्या देखा। डाक्टर बन्सारीका मकान मोरी गेटके पास था। हाँकी-खीसक बहाँ हम सेके और हार गये कुछ दूर न था। कुतुब और तुगलकाबाद तो अब भी दूर समझे जाते हैं।

[बिस्वी—नयी और पुरानी]

इस प्रकार बार्ताकार प्रारम्भ बनेकानेक प्रकारसे किया जा सकता है। जो उदाहरण प्रस्तुत किमे यमे उनसे परे भी बमी अनेक प्रकार हैं—बार्ताका प्रारम्भ किसी प्रश्नसे हो सकता है, किसी बमत्कारपूण बक्तिसे हो सकता है, योत्ताओंको बौकानेबाकी किसी बातसे हो सकता है। इन प्रकारों की कोई सीमा नहीं है, और न इन्हें किन्हीं निश्चित नियमोंमें बाँधा हो सकता है। सब कुछ बार्ताकारकी प्रतिभा एवं बक्तिपर निर्भर है। बार्ताकारको यह सदा स्मरण रखना है कि वह किसी भी प्रकारसे बार्ता प्रारम्भ करे पर उसमें व्याक्यब और रोचकताक गुण बवस्य ही रहना चाहिए। कुछ बार्ताएँ सीमित बवबिकी ओर संकेत करते हुए प्रारम्भ होती हैं

वर्तमान बर्माकी प्रतिकी रैघाएँ इतनी सीधी नहीं हैं कि उनकी चर्चा जोड़े समयमें हो सके ।

[रेडियो संसद अक्टूबर दिसम्बर १९२३]

सीमित मन्त्रिका सचिठ प्रारम्भमें या अन्तमें या कहीं भी प्रयत्नशील नहीं समझा जा सकता । वार्ताकार जानता है कि उसे एक सीमित मन्त्रि में ही अपनी बात कहनी है उसे समयके सम्पनको स्वीकार करके ही चलना है । श्रोता भी इस सम्पनसे परिचित है उसे इसकी पाब रितानकी कोई आवश्यकता नहीं होती । इसका प्रभाव श्रोतापर अल्प नहीं पड़ता ।

प्रारम्भके बाद वार्ताके मध्य भागका प्रश्न आता है । वार्ताकी उत्कृष्टता केवल उसके प्रारम्भपर निर्भर नहीं है प्रारम्भ तो श्रोताको मनको अपनी ओर केवल आकृष्ट कर देता है, विषयके प्रति श्रोतामें निश्चि उत्पन्न कर देता है । उसके बादका सब काम वा वार्ताके मध्य भागपर ही निर्भर है । श्रोता अन्त तक वार्ताको सुनता रह सके इसके लिए इस मध्य भागमें भी पर्याप्त आकर्षकता रहना अनिवार्य है । जैसा कि वीनेट इनकर कहते हैं रोचकताका सतत नवीन होना ही श्रोताको ध्यानको अर्पण करता है । प्रश्न यह है कि वार्तामें प्रारम्भय लेकर अन्त तक किम प्रकार रोचकताको बनाये रखा जाय । इसके लिए भी बड़े हुए नियम नहीं हैं वार्ताकारकी प्रतिभापर ही यह भी निर्भर है । फिर भी यहाँ कुछ ऐसे उपायोंकी चर्चा की जा रही है, जिनसे वार्ताके मध्य भागमें रोचकता बनाये रखनेमें सहायता मिलती है ।

वार्ताकारको सबसे पहले तो यह ध्यान रखना होगा कि समूची वार्ता एक ही प्रकारकी या एकरस न ही । एकरसता रोचकताके मार्गमें सबसे अधिक बाधा डालती है । समूची वार्तामें केवल चौकानेवाली बातें ही रहें, सब कुछ नाटकीय ही रहे या सब कुछ विन्दुस साधारण ढंगमें ही बहो जाय, तो वार्तामें एकरसता बनायास ही जा जायेगी । इन एकरसता को भंग करनेका प्रयत्न आवश्यक है । बीच-बीचमें रोचक प्रसंगों वहायों

उद्धारकों आदिक द्वारा ऐसा किया जा सकता है। बीनेट इनबर्के अनुसार, 'विविधता आवश्यक है मज-स्थितिमें परिवर्तन, दृष्टिकोषमें परिवर्तन और स्पष्टीकरणमें परिवर्तन। तात्पर्य स्पष्ट है कि वार्ताकार अपने विषय को विभिन्न दृष्टियोंसे देखे उसके विभिन्न पक्षोंको उद्घाटित करे, स्थान स्वानुपर विषयान्तर भी करे। विषयान्तरसे एकरसता समाप्त ही भंग होती है पर थोड़ाको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होे इसलिये विषयान्तर करते समय वार्ताकारके लिए यह कह देना आवश्यक होता है कि वह मुख्य विषयसे हटकर दूसरी ओर आ रहा है और ऐसा वह क्यों कर रहा है। मुख्य विषयपर आते समय विषयान्तरके पहले छोड़ी हुई मुख्य बातका दूसरे पक्षोंमें संक्षेप करके आपे बड़नेसे विचारोंकी शृंखला बनी रहती है।

वार्ताकी सभी मुख्य बातोंको एक ही स्वानुपर न कहकर कुछ-कुछ अन्तरपर कहते रहनेसे विविधता बनी रहती है। इसके विपरीत सभी मुख्य बातोंको एक ही स्वानुपर रखनेसे एकरसताकी सृष्टि होती है। वार्ताकी मुख्य बातोंको किस प्रकार और कहाँ-कहाँ रखा जाय यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है और इसपर वार्ताकारको अचरम ही ध्यान देना चाहिए।

वार्ताके क्रमिक विकासके सम्बन्धमें यह पहले ही कहा जा चुका है कि वार्ताकी विषय-वस्तुका विकास तबतक रूपमें कारण-कार्य-सम्बन्धके आधारपर होना चाहिए। वार्ताकी सभी कड़ियोंको सुसम्बन्ध होना चाहिए। इस पत्रागमें श्रोताओंकी जिज्ञासाको अग्रगण्य रखनेकी धमिति रहती है।

वार्ताके विकासकी दृष्टिसे आचार्य विनोबा साबेके इस प्रबन्धनका अत्यन्त मन किया जा सकता है।

'हमने आजादी अहितक तरीकेसे हासिल की। अब एक बड़ा भारी सवाल हमारे सामने यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक रचना करनेमें कौन-से तरीके इस्तेमाल किये जायें। राष्ट्रीयीके उपायोंमें अहिंसारमक तरीका इस्तेमाल किया गया। इसमें कोई विरोधता नहीं है क्योंकि

से कह रहा हूँ। जो गमन बनता है, वह ऊपर चढ़ता है। मनु महाराज
मविष्य सिखा था

पुत्रद्वेषप्रसूतस्य सकाशात्पुत्रमननः ।

स्वं स्वं चरित्रं निक्षेपन्पुत्रिण्यां सर्वमानवाः ॥

‘इस देशमें जो महान् विचारक पैदा हुए या होंगे उनके द्वारा दुनिया
के लोग अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा लेंगे।’ भाइयो ऐसा नेता हमें मिल
था जब हमारा देश अहिंसाके चरित्रे स्वराज्य हासिल कर रहा था। आ
भी हमारे देशमें ऐसे लोग हैं, जिनके हृदयमें सच्चाप है। थोड़ी हिम्मत
और कल्पना-शक्ति रखो तो आपके हाथोंमें दुनियाको आकार देनेकी शक्ति
आ जायेगी। यह कोई आश्चर्य नहीं है यह तो बुनियातकी बखाना है। या
एक एसी महत्वाकांक्षा है, जो रखने लायक है। इसलिए यदि हम भूमिक
मसला अहिंसक तरीकेसे हल कर सकेंगे तो दुनियाको रास्ता दिख
सकेंगे।

[‘त्रिबेणी से

इस प्रवचनका मूक विषय है—मात्रके मुनमें अहिंसाका क्या महत्व है
और भूमिकी समस्या सुलझानेमें इसका क्या योग हो सकता है। इसकी
प्रतिपादन-शैलीमें देखा जा सकता है कि किस प्रकार एकरसताको जग
करनेका प्रयत्न किया गया है—विभिन्न दृष्टिकोणों अपने-अपने पर विचार
किया गया है, सभी बातें तर्कसंगत हैं बीच-बीचमें विचारोत्तेजक बातें हैं
[‘पौबीबीके जमानेमें अहिंसारमक तरीका इस्तेमाल किया गया। इसमें
कोई बिजेषता नहीं है। —‘हम तुम्हें तीरपर बिना किसीके हबाबके चुनाव
कर सकें इसीलिए भयवान् बापुकी के गया। — जपर आप हिंसाकी
मानते हैं, तो बापुका खून करनेवाला पुष्यवान् था—ऐसा कहना होना।
आदि] उचित स्पर्शोपर दृष्टान्तका सहारा लिया गया है। प्रस्तुत प्रवचन
रेडियो-वार्ता नहीं है, पर रेडियो-वार्ताकी दृष्टिसे भी सचस समझा जायेगा
इसमें सन्देह नहीं।

अब वास्तविक अन्तके सम्बन्धमें विचार किया जाय । इसका महत्त्व अन्त और मध्यसे किसी प्रकार कम नहीं है । यह वास्तविक अन्त ही है जोकी पक्षिमाँ भोलाके मनमें वार्ता सुननेके कुछ देर बाद तक पहुँचती थी है । सबमुच अन्त किसी वास्तविक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है । लेकिन जितना महत्त्व मिलना चाहिए, उतना साधारणतः नहीं मिलता ।

इस सम्बन्धमें सबसे पहली बात तो ध्यान देनेकी यह है कि वास्तविक अन्त पक्षियोंसे वास्तविक समाप्तिका ज्ञान होना चाहिए, उन्हें सुनकर उन न कने कि वार्ता एकाएक समाप्त हो गयी यह आगे भी बल सकती है । शीर्षका देख—कनाडा शीर्षक वास्तविक यह अन्त देखिए

रिडका जो डिब्बा हमने देखा वह बड़ा विशिष्ट था । डिब्बेकी लम्बाई कोई ८० फुट । और इतने-से डिब्बेमें २४ मुसाफिरोंमें-से हरेकके लिए कम-अलग कमरे थे । कमरोंकी दो न्यारें थीं और बीचमें दो फुट चौड़ा रास्ता । कमरेमें उपलब्ध अनेक सुविधाओंकी वजहसे बाह कमरेकी इन वस्तुओंके सिवा पानी पीनेके सेस्यूलाइडके बिल्लास कमोडका कापड़ वगैरहकी डिब्बी चार तीखिये और साबुन ये वहाँकी बल सम्पत्ति थी । नियाके नवीनतम रेडके इस डिब्बेका नाम है डिप्लेक्स क्वेट ।

[प्रसारिका बुलाई-विस्मर १९३३]

यह वार्ता एकाएक समाप्त हो गई—वैसी कम्ती है । उपयुक्त पक्षियोंसे वास्तविक अन्त नहीं होता । स्वान-परिचय-सम्बन्धी एक दूसरी वार्ताकी अन्तिम पक्षियोंके एक ऐसा उदाहरण किया जाय जिससे वार्ताकी समाप्तिका परिचय मिले । 'यह उदाहरण है वास्तविक यह अन्तिम अंत है

आज भी याद है बिल्लीका वह बड़, रिडकाका वह मन्दिर अन्तका वह दुर्ग और मेवाड़ी मारीत्वकी किरण-सी वह धनी ।

[आकाशवाणी प्रसारिका, फ्रील-बुन १९५६]

तत्त्वप्रधान वार्ताओंके सम्बन्धमें यह पहले कहा जा चुका है कि उसकी मुख्य बातोंको अन्तमें दुहरा देना श्रोताकी स्मरण-शक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी होता है।

बिना वार्ताओंका उद्देश्य श्रोताओंका सक्रिय सहयोग प्राप्त करना होता है, श्रोताओंको एक निश्चित दिशामें क्रियाशील बनाना होता है, उनके अन्तमें उस क्रियाशीलताका संकेत अव्यक्त है। आचार्य किनोबाका जो प्रवचन पहले उद्धृत किया गया है, उसके अन्तिय अंशमें इसे देखा जा सकता है।

अन्य प्रकारकी वार्ताओंके अन्तिय अंशोंको भी आकषक एवं प्रभावोत्पादक होना चाहिए। यह प्रभाव और आकषक किन्ती कुमती हुई उक्ति किसी कविताकी पंक्ति किसी महापुरुषके उद्धरण किसी प्रसन्न व्यक्तिसे उद्धृत किया जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप कुछ वार्ताओंके आकषक अन्त देखे जा सकते हैं।

पहला उदाहरण कवि सम्मेलनोंके 'कड़ुए मीठे अनुभव' शीर्षक वार्ताका है। 'जब मैंने बात शुरू की थी' तो सोचा था कुछ मीठे अनुभव सुनाईगा और कुछ कड़ुए, पर जब बात चरम करनेका बज्र जाया है, तब देगता हूँ कि कड़ुए अनुभव ही रचाया गया पाया है। मीठे अनुभवकी बात तो हमने ही समाप्त हो जाती है कि कवि-सम्मेलनमें बुलाया गया कविताकी एवम् बाह-बाही हुई, समुचित पारिभाषिक दिया गया और चरम हो गया। इसमें कहनेकी क्या बात हुई ?

प्राचीनी कहानी सेवक मोपासति एक बार कित्तीने कहा कि आप बिजनी कहानियाँ लिखते हैं जब सबसे बुरी औरतोंकी चर्चा रहती है आप यही औरतोंके बिषयमें कहानियाँ क्यों नहीं लिखते ?

मोपासति कहा मतो औरतोंके बारेमें कोई कहानी नहीं होती।

[आकाशवाणी प्रसारिका, चण्डूबर दिसम्बर १९४७]

‘दिलवाड़ा दीपक बार्ताका अन्त इस प्रकार है

‘कौन है जो विदेशोंसे भारत जाता है और इन मन्दिरोंके सर्वस्वर समकृत नहीं हो जाता ? पहला उत्प्रेक्षक इस सम्बन्धमें कर्नल टाडका मित्रता है। यही आकर और मन्दिरके विपत्तियोंके देखकर उसने अपनी पुस्तकमें लिखा है— बौद्धता माताके बाटसे बका ठब वीपहर हो गया था। उसी समय आधुनिक छोटी बुद्धमान हुई और मेरा हृदय आनन्दसे भर गया और उस क्षुण्णिकी तरह मैं अनायास कहूँ चला मैं पा गया, मैं पा गया।

[रेडियो-संग्रह, अक्टूबर दिसम्बर १९३३]

‘पुराणोंमें प्रतीक बार्ताका यह अन्त है

विष्णुके अवतार भी प्रतीकारम्भक हैं। उसके द्वारा पुराण केषकोने मृष्टिके युवकोंकी सम्यक्ता और संस्कृतिके विकासके क्रमका वक्षन किया है। मत्स्य—ब्रह्ममें रहनेवाले कूर्म—मत्स्य और बल दोनोंपर रहनेवाले कृत्स्न—आपा पद्म और आभा मनुष्य परधुराम—अनसी मनुष्य राम—मर्वादा पुरुष कृष्ण—मुदपोत्तम बुद्ध—शानी और कल्कि—कर्मियुगका अन्त करनेवाला महापुरुष। क्या ये युवकोंके विकासके प्रतीक नहीं हैं ?’

[रेडियो-संग्रह, अक्टूबर दिसम्बर १९३३]

कविताकी पंक्तिमेंसे बार्ता-समाप्तिका एक अन्तस्वरूप देखिये, बार्ताका दीपक है दोस्त’

‘आप ही बताइए, क्या आप ऐसे दोस्तोंके बचराकर ऐसी अन्त का नाम पार्हे बड़ा कोई न हो। बड़ती तीरपर शायद आपका दिल बचरामें लेकिन फिर आपको मोहितके साथ कहना ही पड़ेगा—

‘कौन ही बिसमें अब न निर्णयें बिभीते हम।

फिर क्या करे कि हो गये साधार जीते हम ॥’

[प्रकाशिका, बुलाई-दिसम्बर १९३५]

इन उद्घरणोंसे स्पष्ट ही गया होगा कि वार्ताका अन्त किस प्रकार आकर्षक बनाया जा सकता है। प्रारम्भ और मध्यके सम्बन्धमें जो बात पहले कही गयी है, वही यहाँ भी दुहरायी जायगी कि वार्ताके अन्तके लिए भी कोई बंधे निमम नहीं है। यह भी वार्ताकारकी शक्ति एवं प्रतिभाके आधारपर अनेक रूपोंमें प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी भी प्रकारसे ही रेडियो-वार्ताका अन्त अस्त और मनपर महती छाप छोड़नेवाला होना चाहिए, यही स्मरण रखना है। यह कहावत ठीक ही कही जाती है—
अन्त भला तो सब भला।

रेडियो-वार्ताकी भाषा-शैली

आकाशवाणीके प्रतीक-चित्रमें संकित है—'बहुजनहिताय बहुजन सुखाय । प्रसारणकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो यह कबक आकाशवाणीका ही उद्देश्य नहीं प्रसारण मानका उद्देश्य है । रेडियो सबकी कला है, यह सामूहिक प्रयत्नीयताका माध्यम है । इसकी सफलता इसी बातमें है कि इससे अधिकधिक लोगोंका मनोरंजन और कल्याण हो सके । रेडियो-वार्ताकी साधकता भी इसी बातमें है कि यह अधिकधिक लोगोंको पहुँच सके और यह कार्य वातामि प्रमुक्त मायापर ही निर्भर है । रेडियो-वार्ताके बनने-बिगड़नेका सारा उत्तरदायित्व मायापर ही है । इस दृष्टिसे भाषा के प्रश्नपर सम्बन्धसे विचार करना प्रत्येक वार्ताकारका कर्तव्य हो जाता है ।

रेडियो-वार्ता अधिकधिक लोगोंकी समझमें आ सके इसके लिए आवश्यक है कि वार्ताकी भाषा उन लोगोंकी भाषा हो जिनके लिए वार्ता प्रसारित की जा रही है । यह बात कई स्तरोंपर ध्यान देनेकी है । सबसे पहला स्तर बहुत ही स्पष्ट है हिन्दी-वापियोंके लिए प्रसारित वार्ताकी भाषा हिन्दी ही होनी चाहिए, उसे हिन्दी-अंग्रेजी हिन्दी-संस्कृत या हिन्दी-अरबीका मियज नहीं होना चाहिए । यह बड़ी सीधी-सी बात है पर इसपर हमारे यहाँ ध्यान नहीं दिया जाता । यह सर्वविदित है कि कितने कम हिन्दी-भाषी अंग्रेजी संस्कृत या अरबी-अरबी जानते हैं और कितने

बहु निश्चित रूपसे स्पष्ट है । क्रियोनेल वैमटिन अपने यहाँकी रेडियो-वार्ताओंके सम्बन्धमें कहते हैं— प्रसारणकर्ताकी अचिन्ती धरमलम होगी चाहिए, उसे अधिकधिक श्रोताओंके लिए बोधव्य होना चाहिए । इसका तात्पर्य यह कि उसे बिलकुल स्थानीय नहीं होना चाहिए । यह कथन अत्यन्त सत्य है । रेडियो-वार्ताका धरमल बहुत ही विस्तृत और व्यापक होना चाहिए, उसे अधिकसे-अधिक लोगोंके पास पहुँचना चाहिए, इसके लिए बोलियोंके व्यवहारसे बचना आवश्यक है । हाँ यहाँ वार्ताकार एक अंश-विशेषके लिए ही वार्ता प्रसारित कर रहा हो यहाँकी बात पूछती है ।

अबो पहले कहा गया है वार्ताकी भाषा इन लोगोंकी भाषा होनी चाहिए, जिसके लिए वह प्रसारित की जा रही हो । इसका अर्थ यह भी है कि वार्ताकी भाषा श्रोता बनेके अनुरूप होनी चाहिए । वार्ताएँ विभिन्न वर्गोंके लिए प्रसारित की जाती हैं—सामान्य शिक्षित व्यक्तियोंके लिए, ग्रामीण जनताके लिए, बच्चोंके लिए, स्कूलोंके छात्रोंके लिए, कार्केजोंके युवकोंके लिए । इन सभी वर्गोंकी अपनी भाषाएँ होती हैं वार्ताकी समझनेकी अपनी सीमाएँ होती हैं । इनपर ध्यान देना वार्ताकारका कर्तव्य है । जिस भाषामें सामान्य शिक्षित व्यक्तियोंके लिए वार्ता प्रसारित की जायेगी उसीमें बच्चोंकी वार्ताएँ नहीं प्रसारित की जा सकतीं । कुछ वार्ताकार इस बातपर ध्यान देते हैं कुछ नहीं देते । ध्यान नहीं देनेवालोंसे एकका उदाहरण देखिए, 'शाम जमान' के लिए प्रसारित जनताकी मुरझा दीर्घक वार्ताकी ये पंक्तियाँ हैं :

'मनुष्य दिन अधिकारोंका उपयोग करता है, समझने अधिकतर समाज की देन है । अध्यापक मिल मालिक पिता राजा और जेवरकी कमरा-छान, मजदूर, पुत्र प्रजा और बन्दीपर अधिकार होते हैं । परन्तु न तो इन अधिकारोंका अस्तित्व बिरह्यायी है न स्वल्प । समाजवादी व्यवस्थामें मित्र-मालिक ही नहीं होता निःसम्मान मनुष्यके लिए पिता सम्बन्ध व्यवहार नहीं हो सकता, प्रजासत्तममें न राजा होना है न राजाओंके अधिकार

हो सकते हैं। बहुतसे अधिकार ज्ञानुन हाथ प्राप्त होते हैं और ज्ञानुन उन्हें चीन की शक्त है।

['सारण, १ से १५ दिसम्बर १९४४]

अपने श्रोताओंकी सीमाबांधपर ध्यान रखनेवाले बार्ताकारोंमेंसे भी एक-का असाधारण बेबाकता है, 'शाय बगदू'के लिए प्रसारित कबका बोल और उच्चक्य निवारण' हीयक बार्ताकी ये पंक्तियाँ हैं

आज किसन दादाके वहाँ घादीकी घूमघाम माराम होती है। कहते हैं वह नापपुरसे गहने आया है। डीमली कपड़े और हर नर कतन भी। और बहुत घूमघामसे मनायी बायेवी घादी। कहते आया इतना पैसा? बेचार यह छोटा-सा कास्तकार जो बीकाने इतना परिश्रम करता है लेकिन कमी मालोमाल नहीं बीसता। घर सारीके लिए तो बहुत खर्चा कर रहा है। कुछ लकड़ी मिठी है। कुर्मी खोरनके लिए, और मुनत है कि करीकी मल साहूकारसे कज भी बिना है। धाबर इती रकमसे यह सारी रोसनी हो रही है।

['सार्ण' १ से १५ जनवरी १९५३]

सामान्य विधिय व्यक्तिबर्णके लिए प्रसारित बार्ताबर्णोंमें भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जगमें ऐसे कठिन शब्द न आवें जिन्हें श्रोता न समझ सकें। रेडियो-बार्ताकी भाषाका ऐसे घरातकपर रहना अपेक्षित है कि वह अधिकसे-अधिक लोगोंके लिए प्राह्य हो सके। इस दृष्टिसे रेडियो बार्तामें सुन्दर शीजनवाले बड़े-बड़े शब्दोंका कोई प्रयुज नहीं है। अनातोले प्रोसने कहे था—'यदि आप समझ नहीं पत्ते तो संसारके सुन्दरतम शब्द भी निरर्थक ध्वनियाँ हैं। इसी सत्यको जेनेट जनवर कुराति है—'बार्ता-में साहित्यिक शब्दावलिबर्ण अर्थात्हीन होनी है। रेडियो-बार्ताकारको ऐसी शब्दावलिबर्ण बचाना चाहिए, ऐसे सभी रेडियो-विद्येयस स्वीकार करते हैं। बी० बी० सी०के प्रसिद्ध बार्ताकार जॉन हिस्टनके सम्मन्धमें एस्कन

बहु निश्चित रूपसे त्याग्य है। छियोनेक पैमिन् जवने बर्हाकी रेडियो वार्तामार्फे सम्बन्धमें कहते हैं— प्रसारणकर्ताकी बड़ेसी सरलताम होनी चाहिए, उसे अधिकारिक श्रोताओंके लिए बोधमय होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह कि उसे बिकसुक स्वानीय नहीं होना चाहिए। यह कथन अत्यन्त सत्य है। रेडियो-वार्ताका प्रसारण बहुत ही विस्तृत और व्यापक होना चाहिए, उसे अधिकते-अधिक लोगोंके पास पहुँचना चाहिए, इसके लिए बोलियोंके व्यवहारसे बचना आवश्यक है। हाँ यहाँ वार्ताकार एक अत्यन्त विशेषके लिए ही वार्ता प्रसारित कर रहा हो बर्हाकी बात बूझपी है।

अभी पहले कहा गया है वार्ताकी भाषा जन लोगोंकी भाषा होनी चाहिए, जिनके लिए वह प्रसारित की जा रही हो। इसका अर्थ यह भी है कि वार्ताकी भाषा श्रोता वर्गके अनुकूल होनी चाहिए। वार्ताएँ विभिन्न वर्गोंके लिए प्रसारित की जाती हैं—सामान्य शिक्षित व्यक्तियोंके लिए, शारीक जनताके लिए, बच्चोंके लिए, स्कूलोंके छात्रोंके लिए, कालेजोंके मुबर्कके लिए। इन सभी वर्गोंकी अपनी भाषाएँ होती हैं वार्ताको समझनेकी अपनी सीपारें होती हैं। इनपर ध्यान देना वार्ताकारका कर्तव्य है। जिस भाषामें सामान्य शिक्षित व्यक्तियोंके लिए वार्ता प्रसारित की जायेगी उसीमें बच्चोंकी वार्ताएँ नहीं प्रसारित की जा सकतीं। कुछ वार्ताकार इस बातपर ध्यान देते हैं कुछ नहीं देते। ध्यान नहीं देनावार्तामैसे एकका प्रवाहरण है। 'सम जनतु' के लिए प्रसारित 'जनताकी सुरक्षा' दीर्घ वार्ताकी ये पंक्तियाँ हैं :

'मनुष्य जिन अधिकारोंका उपयोग करता है उनमेंसे अधिकतर समाज की देन है। अध्यापक मिल मासिक पिता राजा और बैरको क्रमशः छात्र मजदूर, पुत्र प्रजा और बन्दीवर अधिकार होते हैं। परन्तु न तो इन अधिकारोंका अस्तित्व निरस्पायी है न स्वयं। समाजवादी व्यवस्थामें मिल-मासिक ही नहीं होता निःसम्मान मनुष्यके लिए पिता राजाका व्यवहार नहीं हो सकता, प्रजासभ्यमें न राजा होता है न राजाओंके अधिकार

हो सकते हैं। बहुतेसे अधिकार कानून द्वारा प्राप्त होते हैं और कानून उन्हें छीन भी सकता है।'

['तारम,' १ से १५ दिसम्बर १९३४]

अपने मोताबोंकी सीमाओंपर ध्यान रखनेवाले बार्ताकारोंमेंसे भी एक-का उदाहरण देना जा सकता है, 'घाम बगलू'के लिए प्रसारित 'कर्मका बोझ और उसका निवारण' छीपक बार्ताकी ये पंक्तियाँ हैं

नाब किस्मन बाबाके यहाँ घावीकी धूमधाम मामूम होती है। क्यूते है बड़ नाबपुरसे लहने लाया है कौमठी कपड़े और डर मर बर्तन भी। और बहुत धूमधामसे मनामी बायेनी घावी। क्यूते बाया इतना पैसा ? बेचार यह छोटा-सा कास्तकार वो बैलसे इतना परिभम करता है सेफिन कमी मालोमाल नही बीखता। पर घावीके लिए तो बहुत खर्चा कर रहा है। कुछ तकली मिली है कुनौ लावनेके लिए, और मुनते है कि कपड़ेही मक साहूकारसे कर्ज भी लिया है। घायब इसी रकमसे यह मारी रोमनी हा रही है।

['तारम' १ से १५ जनवरी १९५३]

सामान्य शिक्षित व्यक्तियोंके लिए प्रसारित बार्ताओंमें भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उनमें ऐसे कठिन शब्द न आवें जिन्हें धाता न समझ सके। रिडियो-बार्ताकी प्रापाका ऐसे पराठसपर रहना अपेक्षित है कि वह अधिकसे-अधिक लोगोंके लिए ग्राह्य हो सक। इस दृष्टिय रिडियो बार्तामें सुन्दर शीखनवाले बड़े-बड़े शब्दोंका कोई मूस्य नहीं है। अनागोके पासने कहा था—'यदि आप समझ नहीं पाते तो संसारक सुन्दरतम मञ्ज भी निरर्थक ध्वनियाँ हैं। इसी सत्यको जेनेट इनवर कुहरायै है—'बार्ता-में साहित्यिक धम्मावनिर्वा अर्बहीन होती है। रिडियो-बार्ताकारको ऐनी पम्मावक्तियोंसे बचना चाहिए, इये सभी रिडियो-निघोषम स्वीकार करने हैं। बी० बी० सी०के प्रसिद्ध बार्ताकार जॉन हिस्टनके मन्त्रव्यममें एकत्र

एक डीरोवियन एकनका कथन है—'वास्तवमें वे अपनी वार्ता लिखनेमें अधिक परिश्रम करते थे—जिस साहित्यिक परम्परामें वे पके थे उससे लड़ते हुए, लोकप्रिय मायाकी लोभ करते हुए, और 'बम्बई अंडेकी पीले छोड़ते हुए । जॉन हिस्टनका उदाहरण प्रत्येक रेडियो-वार्ताकारका धारण होना चाहिए । कठिन साहित्यिक शर्तोंका मोड़ छोड़कर ही कोई वार्ताकार सफल वार्ताकी रचना कर सकता है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस दृष्टिमें अद्यावधि विकास हो रहा है के स्थानपर 'जमी तक विकास हो रहा है अधिक उचित समझा जायेगा ।

शर्तोंकी कर्षा कम रही है तो यही यह भी कह दिया जाय कि वार्ताकारको ऐसे शर्तोंके व्यवहारसे बचना आवश्यक होता है जो सम्मान उन्धारणके कारण अक्षयमें बाधक होते हैं । 'बीबी सीबी की अपेक्षा 'बीबी रेडियो के बच्चे कहना अधिक अच्छा होता । इसी प्रकार मुर्तियोंमें बाधक शर्तोंमें भी बचना उचित है । इसलिये वार्ताकारोंके बचने 'इतने बर्षों' कहना प्रसंगीय कहा जायेगा ।

रेडियो-वार्ताकी भाषा वैकीक सम्बन्धमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह स्मरणीय है कि उसका आचार भाषाका लिखित रूप नहीं धरना चाहिए । इस दृष्टिमें भी मुद्रित लिख्यों और प्रसारित वार्ताओंमें अन्तर होता है । यह बात उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगी । जैसा पहले कहा जा चुका है हमारे महानि अधिकतर लिख्य ही प्रसारित होते हैं, कठिन प्रसारित वार्ताओंमें ही हमें मुद्रित भाषाके अनेक उदाहरण मिल जायेंगे । प्रस्तुत उदाहरण भारतीय पुरानी राजनीति कीर्तिक वार्ताका है

'यद्यपि आनुवंशिक राजतन्त्रा बचन शून्यदर्में भी विमता है, परन्तु राजाका उत्तराधिकारी नियम नियमबद्धता बुद्धिमेव विद्याप्रति मुमुक्षुति सत्यवादिना धमप्रियता इत्यादि मुचामे विभूविण होनेपर ही राजा बन सकता था और किमीके राजतन्त्र अभिविषय होनेके लिए वैदिक काल

में सभा तथा समितिकी और सामाजिकता तथा महामारतकाकमें पीरजाम-पाद संस्थाओंकी स्वीकृति अनिवार्य होती थी ।

[रेडियो समूह, धनदुबेर दिसम्बर १९५३]

इस अंतक केवल कठिन शब्द ही नहीं, बल्कि इसका वाक्य-संपन्न भी इस बातकी ओर संकेत करता है कि यह भाषाका भावित रूप नहीं लिखित रूप है यह रूप बोलने और सुननेके लिए नहीं लिखने और पढ़नेके लिए है । हम बोलते समय अन्वे-अन्वे वाक्योंका व्यवहार नहीं करते मिस और संयुक्त वाक्यास बहुत कम काम लेते हैं, हमारे शब्द और वाक्य ऐसे होते हैं जिनके बोलनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं होती और जिनकी समझनेमें भी सुननेवालोंकी मानसिक व्यायाम नहीं करना पड़ता । निष्कर्षमें भाषाका लिखित रूप मले ही असंभव रेडियो-वार्ताओंमें नहीं चल सकता । इसलिये वार्ताकारको इस ओर अवश्य ही ध्यान देना है उसे भाषाक उच्चरित स्वरूपका आचार ग्रहण करना है । रेडियो वार्ताकी रूप अभिव्यंजना-शैली वाक्य शब्द, सबका हमारी बोलचालकी भाषाके निकट रहना अपेक्षित है । वीनेट इनकरके अनुसार 'वार्ताका आन्वय लिखनेमें सामान्य वार्तालापकी रूप बनी अच्छी पक्-निर्वेदिका है ।

इस सम्बन्धमें एक बात ध्यान रखनेकी अवश्य है कि रेडियो-वार्ताकी भाषाको हमारी बोलचालकी भाषाके निकट रहना है उसे बोलचालकी भाषा नहीं हो जाना है । रेडियो-वार्ता और सामान्य वार्तालापमें अन्तर है । रेडियो-वार्ता साहित्यिक कृति है उसमें शक्ति चाहिए प्रभावोत्पादकता चाहिए, सुस्ती चाहिए । बोलचालमें बिचरहट होती है स्थान-स्थान पर अपुरे वाक्य छेड़ते हैं बातों और शब्दोंकी निरर्थक आबत्तियाँ हाठी हैं 'तब तो बस 'अच्छा मममे ?' जैसे अनेक शब्दोंका बहुलताके साथ व्यवहार होता है । रेडियो-वार्तामें इन सबके व्यवहारसे उसकी शक्ति में क्षीणता आती है । इसीलिए अनुसूची प्रसारणकर्ता रेडियो-वार्ताको बोल

बालके निकट रहते हुए भी उससे दूर रहनेका परामर्श देते हैं। जैसे जनबालका ही विचार किया जाय—रेडियो-भारतकी बृष्टिमें स्वाभाविक बार्ता दैनिक व्यवहारकी भाषाकी मुहाबरेदार और प्रामाणिक अभिव्यक्ति है उसका अन्वय प्रस्तुतीकरण नहीं है। एस्कन ऐश बोरोचियन एस्कनके अनुसार, 'प्रतिदिनकी भाषाको निश्चित लक्ष्यावलिओं और नाबनाओंके रूपमें तीव्र बना देना महान् प्रसारणकर्ताकी महत्वपूर्ण विशेषताओंमें है। इन विशेषताकी उपलब्धिसे लिए आवश्यक है कि बालके राज्य और बाध्य सरल सुबोध होते हुए भी दैनिक व्यवहारके कारण बिलकुल चिंते-निः न हों ऐसे चिंते-निः शब्दोंमें अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करनेकी समझ नहीं होती अज्ञेयजीने कहा ही है—वाचन अधिक बिलसे मुस्ममा पू जाता है।

बिलकुल बालबालकी भाषाके व्यवहारसे रेडियो-बार्ताओंमें जो दुर्बलताएँ आती हैं इनके सम्बन्धमें भी प्रसारणकर्ताओंने विचार किया है। उनके अनुसार 'अच्छा भाष समझते हैं जैसे शब्दोंका अधिक व्यवहार बार्ताकी बोधगम्यतामें बाधक होता है। जन बार्ताकारकी हमपर भी ध्यान देना चाहिए।

बालबालके निकट रहकर भी भाषा बालबालकी बुद्धिगततासे मुक्त रहे इसमें ध्यान रहे सरलता रहे बोधगम्यता रहे, वह बोलनेमें सहज और सुविधाजनक हो, इन सभी बृष्टियोंसे इस पुस्तकमें पहले उद्भूत विनोबा भावके प्रबचनोंके अर्थोंका अध्ययन किया जा सकता है। ही उन प्रबचनोंमें बचनकी बालबालकी अपनी सय है जो सभी स्पर्शनपर परि लक्षित होती है समझ प्यार देना उनके सहारे अपनी अभिव्यक्ति करना सरल व्यक्तित्वका अभिव्यक्ति करना है जो रेडियो-बालके लिए अनि बाध करने विवेचनसे यह स्पष्ट है कि रेडियो-बालकी भाषा पुस्तकों

की निर्जीव भाषा नहीं है, प्रत्यक्ष सम्भाषणकी समीप भाषा है। इसके लिए बड़ी ही प्राणवस्तु शैलीकी अपेक्षा है, ऐसी शैली जिसके शब्द बोझले हों चित्र-निर्माण करते हों जो श्रोताओंको अपने सौन्दर्यके प्रति आकृष्ट न कर अपने पीछे उफलते मार्गों-विचारोंके प्रति आकृष्ट करते हों जिसके वाक्यांश मति हो प्रवाह हो व्यासक्तता हो संप्राणता हो। मापित शब्दों-की शक्तिपर आधारित ऐसी ही जीवनमयी भाषा-शैली रेडियो-वास्तुकी सफल बना सकती है।

रेडियो-वार्ता-प्रसारण

रेडियो-वार्ताकार केवल डेक्क ही नहीं अभिनेता भी है। वार्ता-संयोजक की समालोचिकी भाव ही वह ऐकात्मिक व्यक्तित्व पृष्ठ पर होता है, और उसके ऊपर अभिनेताका अंतरासाहित्य आ जाता है। अब उसकी वार्ता नाटक बन जाती है, और वह अज्ञाना मुख्य अभिनेता हो जाता है। रेडियो वार्ता एकपात्री नाटक है जिसका मुख्य पात्र वार्ताकार होता है। इन नाटकमें वह किसी दूसरे व्यक्तित्व अभिनय नहीं करता स्वयं अपना अभिनय करता है, अपने व्यक्तित्वमें निहित विशेषताओंको उद्घाटित करता है। इन अभिनयकी सफलतापर ही वार्ता-प्रसारणकी सफलता निर्भर है। अच्छीसे-अच्छी किसी हुई वार्ता भी प्रसारण-कर्मकी दुर्बलताके कारण बिलकुल प्रभावहीन और अव्यय हो जाती है। इन्हींलिए प्रसारणके अन्तर्ग भी ध्यान देना वार्ताकारके लिए आवश्यक है। जैसे नाटककी सफलता रचनाकार पर निर्भर होती है उसी प्रकार रेडियो-वार्ताकी सफलता रेडियोमें माहौलपर निर्भर है। वार्ताकार किस प्रकार माहौलपर अपना स्वाभाविक विश्वसनीय और प्रभावशाली अभिनय प्रस्तुत करे इस विषयमें वार्ताकारको बहिष्कृत होना चाहिए।

यह विचार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है कि वहाँ रचनात्मक या रेडियो-नाटकके अभिनयके लिए क्योंकि अभ्यास और प्रशिक्षणको आवश्यकता समझी जाती है वहाँ सामान्य वार्ताकार एक दिनका ही नहीं एक बारका अभ्यास भी

अभावश्यक मानता है। प्रोड्यूसर दोपहर में अपने वार्ताकारसे टेकीफोनपर कहता है—'हमारा घामको एक-डेढ़ घण्टे पहले वा बाइए, तो रिहर्स हो जायगा। उसे उत्तर मिळता है—'रिहर्सकमी क्या बकरत है? मैंने पढ़ कर देख लिया है, सब ठीक है। मैं १५ मिनट पहले वा बाईंगा।' यह तो नये वार्ताकारोंकी बात है, पुराने वार्ताकार कहेंगे, मुझे रिहर्सकमी क्या बकरत मैं तो पाँच बयेंसि वार्ताएँ प्रसारित करता वा रहा हूँ [कास उन्हें पता होता कि पाँच बयेंसि समक्री वार्ताएँ कोई सुनता भी वा रहा है या नहीं।] और प्रसारणके निश्चित समयसे दो-चार मिनट पहले स्टूडियोमें आ जायेंगे। ऐसी स्थितिमें आकाशवाणीसे प्रसारित वार्ताएँ अनाकपक और प्रभावहीन होती हैं। तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वार्ता-प्रसारणके पहले रिहर्सकमी कमिबार्कताके सम्बन्धमें डॉन एस० कार्माइसका यह विचार उद्भूत कर देना पर्याप्त होगा—'रेडियो-वार्ता-प्रसारणके कुछ ही मिनट पहले माइक्रोफोनके सामने पहुँकी वार किसी भी व्यक्तिकी नहीं जाना चाहिए, वार्ताकारको रेडियोका अनुभव पहलेसे कितना भी अधिक क्यों न हो। प्रसारण सत्पाएँ वार्ता-प्रसारणके पहले हमेशा ही माइक्रोफोन रिहर्सकमीके लिए एक समय निश्चित करती है। उसमें बिताये गये समयका पुरस्कार वार्ताकार और श्रोता दोनोंको ही मिळता है।

रिहर्सकमी कितनी परेधानियोंकी बचत हो जाती है यह रेडियोसे सम्बद्ध व्यक्ति ही जानते हैं। इस सम्बन्धमें आने कुछ चर्चा करनके पहले अपना एक मनोरंजक अनुभव प्रस्तुत करनकी इच्छा होती है। कॉम्बिके एक प्राभ्यापक पहली वार एक वार्ता प्रसारित करने आवे—निश्चित समयसे तीन-चार मिनट पहले। और कुछ कहनेका समय वा नहीं स्टूडियोमें पहुँचकर मैंने इतना कह दिया कि 'ठीक समयपर दूसरे स्टूडियोसे एना उमर आपका नाम प्लाउस करेंगे और उसके बाद आपके सामने दीवार पर चढ़ीके नीचेवासी बत्ती जलेगी तब आप अपनी वार्ता सुक करेंगे। और हाँ वार्ता समयसे शरम कर बीबिएगा। समय हो गया वा और मैं

बुध [स्टूडियोकी बरकजब जोटा-सा कमरा, जिसमें एनाउन्सर, प्रोड्यूसर
 बाकि बैठी है] में बसा गया लेकिन मुझे लग रहा था कि बार्ताकारों
 मेरी बातें सुनी नहीं हैं क्योंकि वे मानसिक बबकॉइडकी स्थितिमें थे। दूसरे
 स्टूडियोसे एनाउन्सरने बोधना की—'अब की बार्ता
 सुनिए। श्री..... । अपना नाम सुनायी पड़ा नहीं कि
 उनको आवाज मुझे नहीं मिला रही थी क्योंकि मुझे बुधमें कन्ट्रोल कम
 [जहाँ इंजीनियर बैठे हैं, और वहसि वे स्टूडियो बाकि संभाषण करते
 हैं] से लिंक [रोसनीका वह संकेत जिससे यह बात होता है कि अब
 वह स्टूडियो काम कर रहा है और वहसि कामकम प्रसारित किया जाय]
 नहीं मिला था। मुझे अब लिंक मिला तो मैंने उनक स्टूडियोमें लिंक
 किया वहींके नीचेकी काल बत्ती जल गयी। उस समय बार्ताकार अपने
 किसी बापके बीचमें से थोटाबोने भी उन्हें बहूते सुना हीया। बार्ता
 सुनते हुए मैं सोच रहा था कि सम्भव है, बार्ताकार निश्चित समयसे आये
 बड़नेकी कोशिश करें उस समय उनकी बार्ताको किसी अच्छी बपहपरसे
 बात देनेके लिए तैयार रहना चाहिए। बार्ताकार बार्ता पढ़ते जा रहे थे
 उनकी आवाज बरकज रही थी कि उनके भीतर बबकॉइड बहुत अधिक है
 मैंने पढ़ी देखी अभी तीन मिनट बाकी थे। बार्ताकारकी भी धारब समय
 की याद आयी उन्होंने भी फिर उठकर सामनेकी बड़ी पढ़ी देखी कि
 कतना बुध हो गये—बातकि मध्यमें ही। मैं चौंक गया कि यह क्या
 हो गयी। सामने देखता हूँ तो बार्ताकार धान्य भावसे बुरीपर बैठे
 काचार होकर मैंने स्टूडियोका लिंक नै लिया। स्टूडियोमें आकर
 पूछा—'अभी तो तीन मिनट थे आप बीचमें ही क्यों बुध हो
 गये?' मैं समझ गया कि लाल बत्ती जल गयी वहसि बहुत संकेत है बा
 उसे यहाँ भी यही समझा।

रिहर्ससे केवल इस तरहकी सामान्य वार्ताकी ही जानकारि नहीं हो जाती बल्कि और भी बनेक सुविधाएँ होती हैं। नये वार्ताकारको यह ज्ञात नहीं होता कि उसे किस पत्रिसे वार्ता प्रसारित करनी है, अपने घरपर लिखे वह इस मिनटकी वार्ता समझता है, वह स्टूडियोकी दृष्टिसे पत्रह मिनटकी वार्ता हो जाती है उसे कट-साँटकर इस मिनटकी सीमामें बाँधनेका काम रिहर्सकमें ही हो पाता है। इसके अतिरिक्त उसे इस बातकी भी जानकारी मिलती है कि वह आम्बेडकरके पत्रोंको किस प्रकार उल्लेख करे कि उनसे बड़बड़ाहट न हो बल्कि माइक्रोफोनसे कितनी दूरपर बैठे उसकी आवाज कितनी ऊँचाईपर रहे, वह वार्ता किस प्रकार प्रसारित करे किन सम्बन्धोंपर और वे आवि। रिहर्सककी उपयोगिता नि सन्दिग्ध है उसके लिए रेडियो-अधिकारियोंका आम्बेडकर स्वीकार करना और आम्बेडकर न मिलनेपर उसके लिए स्वयं आग्रह करना प्रत्येक वार्ताकारका कर्तव्य है।

बन प्रसारणकी कुछ अनेकित विशेषताओंपर विचार किया जाय। वार्ता प्रसारित करते समय साधारणतः दो कठिनाइयाँ वार्ताकारके सम्मुख आती हैं। पहली कठिनाई यह है कि जनेक वार्ताकारोंको माइक्रोफोनका भय होता है। माइक्रोफोनके सामने आते ही उनमें बड़बड़ाहट आ जाती है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि वे सोचते हैं अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे अमुक प्रतिप्रश्नों मेरी वार्ता सुनते होंगे, यदि वार्ता अच्छी नहीं हुई तो लोग क्या कहेंगे मेरे प्रति क्या-क्या धारणाएँ बनायेंगे। दूसरी कठिनाई यह है कि वार्ताकारका प्रसारण निर्जीव और प्राणहीन हो जाता है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि वार्ताकारके सामने स्टूडियोमें दूसरा कोई नहीं रहता जिससे वह वार्ता निवेदित करे और जिसकी प्रतिक्रियासे उसकी वाणी में जीवितता आवे। एसी स्थितिमें वार्ताकारके मन्त्रवत् हो जानका भय रहता है, इसका संकेत हम पहले ही कर आये हैं। इस भयको दूर करना वार्ताकारकी वाणीमें जीवन के आना प्रसारण कलाकी सबसे बड़ी अनेका है। जीनेट इनकर कहते हैं—'वास्तवमें जिस वस्तुका मुख्य है, वह यह है

कि आपकी बातोंमें भीतर ही । यह कुछ ऐसा काम है जिसे कोई भी प्रोद्गुमार आपके लिए नहीं कर सकता । यह आपसे यह उम्मीद है कि काउंसिल स्वीकारपर आप बिस्मूथ सपाट अवस्था निर्वाह कर्ता है और आपकी बातोंमें कुछ भीतर करनेका प्रयत्न कर सकता है । केवल यह टेक्निकल बात नहीं है यह विज्ञानिक मनोवैज्ञानिक भी है । इसका समाधान आप स्वयं अपनेसे ही कर सकते हैं ।

जिन दो कठिनाइयोंमें और उचित किया गया दोनों ही मनोवैज्ञानिक हैं और इनका समाधान भी मनोवैज्ञानिक ही हो सकता है । सभी अनुभवों प्रसारककर्ताओंमें इनका एक ही समाधान दिया है कि वार्ताकार वार्ता प्रसारित करते समय अपनी मानसिक बुद्धि के सम्मुख अपने किसी प्रिय व्यक्ति परिचित अपना सम्बन्धीका विचार रखें वह यह अनुभव करे कि वह निर्वाह माहकमें न बोलकर अपने प्रिय व्यक्तिसे ही बातें कर रहा है । वैनट इनकर यही बयामय देखे हैं । इनके द्वारा वार्ताकारकी बातोंमें समीक्षा जा सकती है । वैन एल-कल्लिहल कहते हैं—'वार्ताकार काउंसिल स्वीकारके समय अपने किसी परिचित व्यक्तिका विचार करना अपने लिए उपयोगी समझ सकता है ।' एकजण ऐंड डीपेचिमें एलन इसी विचारका समर्थन करते हैं—'अपने सम्बन्धीको मानवीय बनानेके लिए अनेक प्रकारके कर्ताओंको माइक्रोफोनके दूसरे छोरके मानसिक विचारकी आवश्यकता होती है वे केवल माइक्रोफोनमें ही नहीं बोल सकते, उनके मरेकी भी सोचते हैं ।

प्रसिद्ध वार्ताकारोंके अनुभव इस मनोवैज्ञानिक समाधानकी सत्यताकी सिद्ध करते हैं । 'युद्ध भिन्न' पुस्तकमें जिने मरे कुछ अनुभव इस प्रकार हैं जे० बी० वीस्टनी अपने पोलोको वार-वार वा पॉल-वीथीको बोधियोंमें कथित करते हैं जिन्हें वे अपनी बात सावधानीपूर्वक समझना चाहते हैं । वेतमय वेद्योंकी अपन इसकी इस प्रकार दिखते हैं जिन वे अपने सामने बैठे हुए व्यक्तिको अपनी बातें समझा रहे हों । काउंसिल टेक्निक अपने

किसी एक मित्रकी कल्पना करते थे। ए० वे० एकत्र अनुभव करते थे कि व अपन धर्म बसावक सामने बैठे अपने किसी भारतीयसे अपनी साहसिक कहानियाँ कह रहे हों। इन प्रसारणकर्ताओंके अनुभवोंका उपयोग कोई भी वार्ताकार कर सकता है, जो यह सरल काम नहीं है। एकनके ही शब्दोंमें मुद्रित शब्दको स्वामात्रिक अपनेवाली शैलीमें पत्रका प्रयत्न करते समय ऐसा मानसिक चित्र अपने सम्मुख स्पष्ट रचना कोई वाचन काम नहीं है और अनक प्रसारणकर्ता अनुभव करते हैं कि व ऐसा नहीं कर सकते फल यह होता है कि वे इस बातका आभास दे देते हैं कि वे कबल सिद्धित शब्दोंकी ही रक्षा कर रहे हैं। फिर भी वार्ताकार मानसिक मय और निर्बीजतास बचनके लिए इस विषयमें प्रयत्न कर सकता है।

व्यक्तिगतक प्रश्नकी चर्चा पहले वार्ता-लेखनके प्रसंगमें की जा चुकी है, वार्ता-प्रसारणके प्रसंगमें उसका और अधिक महत्त्व है। सबकी बोलने की अपनी शैली होती है, सबकी अपनी आवाज होती है और इन अपनी विशेषताओं दूसरे शब्दोंमें अपनी वैयक्तिकताकी अभिव्यक्ति रेडियो-प्रसारणमें होनी चाहिए। हाँ यह ध्यान रखनकी बात अवश्य है कि शब्दोंमें उच्चारण गूढ़ हों। माइक्रोफोनकी यह विशेषता कही जाती है कि वह बड़ा ही सूक्ष्मप्राणी होता है और उच्चारणकी साधारण नुटियोंकी भी बहुत बड़ा बनाकर श्रोताओंके सामने उपस्थित करता है। इसलिए वार्ता-कारको अपने उच्चारणपर अवश्य ही ध्यान रखना है। हिन्दीमें तो उच्चारणकी कोई कठिनाई नहीं है, फिर भी बहुत छोप गूढ़ उच्चारण नहीं करते। यदि ह्रस्व और शोर्ष मात्राओंके उच्चारणपर ध्यान दिया जाय स और स र और ग या इ व और व—बैचे कुछेक कर्णिके अन्तरको समझा जाय उच्चारणमें नुटियाँ नहीं हो सकतीं। दूसरे बात ध्यान देनेकी यह है कि वार्ताकारके उच्चारण स्पष्ट और आवाज बिलकुल साफ हो बिनासे श्रोताओंको वार्ताकारकी बातें समझनेमें किसी प्रकारकी

कठिनाई न हो। बीता पहले कहा जा चुका है, बोधयम्यता एक रेडियो-वार्ताकी पहली बात है।

इन दोनों बातों पर ध्यान रखते हुए अपनी व्यक्तिगतताओं तथा और उसकी सघन अभिव्यक्ति रेडियो-वार्तामें बहुत ही आवश्यक है। पी० पी० एकरूपमें कहते हैं 'व्यक्तिगत स्वाभाविक भाषणका एक अंग है। यदि किसी व्यक्ति के स्वरको अस्त-व्यस्त इंगिते भी बोलने दिया जाय, यद्यपि वह समयमें जाने समय ही वह आपनके उस कष्ट-घटिषाके उच्चारणसे अधिक मनोरञ्जक होना की नीरसताको और अधिक स्पष्ट कर देता है। इसीलिए सभी रेडियो-विद्येयक व्यक्तिगतताकी रक्षापर धोर देते हैं। उनके अनुसार वार्ताकारको बोलनेकी टीलीमें किसी दूसरेके अनुकरणकी आवश्यकता नहीं है। बीता कि प्रसिद्ध वार्ताकार एडिस्टेवर कहते वहा है अच्छे प्रसारणमें अपनेको स्वीकार करना ही सबसे बड़ी बात है। तब कुछ वार्ताकारका प्रयत्न यही होना चाहिए कि वह जो है वही रहे, दूसरे के व्यक्तित्वको अपने ऊपर आरोपित न करे। फिर भी उसे प्रसारणकी अन्यायों किन्की चर्चा जाने की जा रही है, की और अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

वार्ता प्रसारित करते समय वार्ताकारकी सबसे बड़ी समस्या है उसकी आवाज। यह आवाज कैसे स्पष्ट, स्वस्थ प्रभावशाली और सुठिय हो यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। कियोलेठ नेमकिन इसके लिए तीन मुख्य बातें बतलाते हैं—गहरी इंगिते उठि कैना साठ-साठ बोलना और मदारमकता। पहली दोनों बातोंके लिए यहुँ उठि पैनके व्यायाम और मुँहकी पुष्टी लोडने तथा मुँहके दूसरे अवयवोंके नाम पैनके सत्र अभ्यास की आवश्यकता होती है। वैमलिक ही उद्योगों में, छात्र और पत्रोंके पुष्ट नाम कैनेके साठ ही बोलनेकी उठि उचित रखनेमें एकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हो सकती है, जो किन्की भी बोलना चाहे वह दैनिक जीवनमें हा या प्रसारणमें जो सम्पुष्ट कर सकती है।'

भाषणमें स्यारमकृता अनिर्धार्य है। इसके अभावमें भाषणमें जीवन नहीं होता वह यत्नबद्ध हो जाता है। भाषा भावों और विचारोंका बड़ा सजीवा माध्यम है। जैसे भाव और विचार होते हैं वैसे ही भाषाका प्रवाह होता है, वैसे ही उसकी गति होती है। भाषणा और अनुसृष्टि ही भाषाको जीवन देती है वह जीवन जब बकताकी बानीमें परिकल्पित होता है, तभी हम कहते हैं कि जसमें स्यारमकृता है उसमें सजीवता है। भावनाओं और विचारोंके अनुकूल बोझनेकी सीमामें परिवर्तन होते रहने को ही हम स्यारमकृता कहते हैं। यमकिन कहते हैं सख्य वैसे बकताके विचारोंकी कारके लिए वेदोक्त है, वैसे ही स्यारमकृता वह तेज है जो उस गाडीको चिकना रखता है। यदि प्रसारण प्रेयणीयता है—जानन्दके लिए—तो प्रसारणकृतके लिए यही पर्याप्त नहीं है कि वह अपनी बात कह दे, बल्कि यह भी कि वह श्रोताको आन्वोसित्य करे। यह स्यारमकृता ही है जो उसे वह काम प्रयावपूज ईकसे करनेमें समर्थ बनाती है।

वहाँ भाषणमें स्यारमकृता नहीं होती वहाँ एकरसता भा जाती है, बकता एक ही सीमामें प्रारम्भसे लेकर अन्त तक बोलता है। और प्रसारणमें एकरसतासे बढ़कर दूसरी सतरताक वस्तु नहीं होती। इस दृष्टिसे प्रसारणकी वह सीमा जिसमें एक निश्चित क्रमसे उतार चढ़ाव रहे, त्याग्य है।

भाषणमें स्यारमकृता विविधताकी जननी है, इससे वास्तिका आकषण बढ़ता है। भाषणमें स्यारमकृता से जानेके लिए प्रसिद्ध बकता डेल कान्नेयी ने चार उपाय बतलाये हैं [१] मुख्य शब्दोंपर जोर देना और चीज शब्दोंको दबा देना [२] भाषाशक्ति र्ज्वास्मि परिवर्तन [३] बोझनेकी गतिमें परिवर्तन और [४] मुख्य विचारोंके पहले और बादमें रुकना।

हमारे उपायके अतिरिक्त सभी उपाय रेडियो-वास्तके लिए भी सही ही हैं। रेडियो-वास्तमि आवाजमें अधिक परिवर्तन न सम्भव है, न अपेक्षित ही। भावकोश्रमकी सीमा होती है वह सूक्ष्मप्राही होनेके कारण औरकी

भाषाओंको विकृत कर दे सकता है। इसके लिए बोधबाल्मी सामान्य भाषाओं ही प्रयुक्त हैं। बार्ताकार मूलतः ही वे बार्ता प्रसारित करते समय किसमें खोसते हैं। इस सम्बन्धमें उन्हें स्मरण रखना है कि संयोजक और स्टूडियोमें प्रत्यक्ष भाषण और रेडियो-बार्तामें अन्तर होता है। प्रत्यक्ष भाषणमें अन्ततः एक समूहको सम्बोधित करता है जबकि रेडियो-बार्तामें वह एक या अधिकके-अधिक भार-ग्राहक व्यक्तियोंको। बड़ी कारण है कि रेडियो-बार्तामें आत्मीयताकी वही आत्मीयताके स्वरकी आवश्यकता होती है। जॉन एच० कार्लाइल कहते हैं 'बड़ी समारोहोंमें भाषण देते समय बोल्नेकी आत्मीयताकी अभाव-रहित है। यह जो औद्योगिक सामान्य भाषाओं की भाषणवासी अर्थोंका कोई स्वप्न नहीं है। इसी प्रकार दो-द्वार व्यक्तिवाके सामन प्रत्यक्ष अपने बोल्ने और रेडियोसे बोल्नेमें भी अन्तर है। एल्फ्रेड जेम्स बोरोविचम एल्फ्रेड विचार है—'एक ही कमरेमें आपके साथ बैठकर कुछ और प्रीस्टको आगते उसी प्रकार बातें नहीं करने जिस प्रकार वे रेडियोपर करते हैं। उनका हृदय आपकी प्रतिस्पर्धाओंके प्रति सहृदयीक रहेगा, सम्बन्ध वह कम आटकीव और आधिकारिक होगा। इनके शब्द मूलतः एक ही हो सकते हैं लेकिन उनकी तीव्रता कम होगी। तालम यह कि बार्ताकारकी भाषाओं उसकी सामान्य बार्ता-कारकी भाषाओंके कुछ भिन्न होती है। क्रियोजेक वैकल्पिक कहते हैं 'इस देशके सभी प्रथम श्रेणीके प्रसारणकर्ता भीभी भाषाओंमें बोल्ते हैं जो सामान्य बार्ताकारकी भाषाओंके कुछ अर्थोंकी होती है।

ऐसे कामोंकी बननाये वसे अन्य उपायोंका सम्बोध रेडियो-बार्ताकारों द्वारा होना चाहिए। मुख्य कारणोंतः जोर देनेसे शब्द बोल्नेकी वहीमें ही विविधता नहीं आती बल्कि बिचारोंकी अभिव्यक्ति भी अचल होती है। बोल्नेकी गतिके सम्बन्धमें यह रचना है कि बहुत तीव्रसे बोल्नेमें भाषाओंकी बार्ता सम्बन्धमें बर्तनाई होती है। इनके विरोध गति बहुत धीमी रहनेसे लगता है, जैसे बार्तामें जीवन ही नहीं है। एल्फ्रेड

वार्ता-प्रसारणमें यदिका मध्यम मार्ग उचित हो सकता है, ही यह मध्यम मार्ग भी सदा एकरस न रहे, उसमें सदा परिवर्तन होता रहे, यह आवश्यक है। इसी प्रकार उचित स्थलोंपर रुकना कहीं-कहीं क्षणिक दान्ति बाहि भी विविधताके सिद्ध आवश्यक है।

वार्ता-प्रसारणमें वार्ताकारोंको अपनी स्वभावगत दुर्बलताओंसे भी बचना जरूरी है। मेरे एक मित्र है, जो हर वाक्यके बाद कहते हैं— 'समझे न ? अब वे कहते कप्तते हैं—'म उनके यहाँ जाना जाने गया था समझे न ? बहुत अच्छे जाना जिसाया समझ न ? तो कहना मत होना है—'महीं समझे। बोल्डनकी पीछीमें भी छोपोंकी एसी आरतें होती हैं बीच कुछ छोप वाक्यके पहल शब्दपर बहुत धोर धते हैं कुछ छोप अन्तिम शब्दपर। कुछ लोग हैं जो वाक्यकी अन्तिम क्रियाबोला दूर तक खींच से जाते हैं—'जाता हूँ—ऊँ-ऊँ। व लोग आये वे—ए-ए। एसी आरतें माइक्रोफोनपर बड़ी स्पष्ट परिचक्षित हो जाती हैं और इनसे बचना सफल वार्ताकारका कर्तव्य है।

जैसा इस अध्यायके प्रारम्भमें कहा गया है रेडियो-वार्ताकार कबक भी है, और अभिनेता भी। वार्ता प्रसारित करते समय उसमें नाटकीयता अत्यन्त ही अपेक्षित है, पर यह देखते रहना है कि वह अतिनाटकीयतामें न बदल जाय। नाटकके अभिनयकी विशेषता उसकी स्वाभाविकतामें समझी जाती है—नाटकका अभिनय इतना स्वाभाविक हो कि दृशक यह न समझे कि नाटक हो रहा है। यही बात रेडियो-वार्ताके सम्बन्धमें भी कही जायेगी। वार्ताका प्रसारण इतने स्वाभाविक ढंगसे हो कि श्रोताका उसमें कहीं भी नाटकीयताका आभास न मिले वह समझे कि कोई उससे स्वाभाविक रूपमें बिना किन्ही आयासके बातचीत कर रहा है। यही वार्ताकी सफलता कही जायेगी।

वार्ता-प्रसारणके सामान्य नियम यही है किन्तु सभी नियमोंके अपवाद होते हैं। रेडियोपर बोलनेवासे ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं जो सभी

नियमोंको सशुद्ध करनेके बाद भी सफल समझे गये हैं। ऐसे तीन व्यक्तियोंकी चर्चा सोमनाथ खिबने की है। पहला है ह्यूटकर जिसे 'रेडियो का मौलिक कलाकार' कहा जाता है। वह आरंभमें इतने धीरेसे विष्कम्भता या कि लगता या रेडियो-सेट लम्ब-लम्ब ही जायेगा फिर भी सुननेवाले सुननेको सदा उत्सुक रहते थे। दूसरा नाम चर्चिकका है जो अपनी बाल्तामें अभ्ययनपूज साहित्यिक अध्यापकोंका व्यवहार करते हैं। तीसरे व गौधीजी, जिनके सर्वों और धीलीकी कलाहीनता ही जिनकी कला थी। ये बाल्ताकार प्रसारणके नियमोंके अपवाद हैं। अक्सर लेकिन मुझे लपटा है कि उनकी सफलता प्रसारणके दृष्ट सबसे बड़े नियमकी सत्यताको सिद्ध करती है कि रेडियो-बाल्तामें व्यक्तित्व सबसे मुख्य तत्व है। यहाँ व्यक्तित्व महान् है, वहाँ नियमोंका पाठन किये बिना ही बाल्तामें आकर्षण आ जाता है। सामान्य व्यक्तित्वोंके लिए नियमोंका पाठन आवश्यक है इसमें सन्देह नहीं।

रेडियो-वार्ता और प्रो० वर्ननके निष्कर्ष

अब उसके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि रेडियो-वार्ताकारका सबसे मुख्य काम अपने लेखन एवं प्रसारणके द्वारा अपनी वार्ताको श्रोताओंके लिए सहज-बाह्य बनाना है। कन्वम विस्वविद्यालयके प्रो० पी० ई० बननने १९५० में रेडियो-वार्ताओंकी बोधगम्यताके सम्बन्धमें अनुसन्धान-कार्य किया था। उनके निष्कर्ष बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। हमने अब तक जो विवेचन किया है, उसमें इन निष्कर्षोंका सहारा यथास्थान दिया गया है। रेडियो-वार्ता-सम्बन्धी मुख्य बातोंकी रेखांकित करनेके उद्देश्यसे हम अन्त में प्रो० बननके कुछ निष्कर्षोंको उद्धृत कर रहे हैं।

[१] वार्ताकी बोधगम्यताके लिए उसके विषयका रोचक होना जरूरी है। परीक्षाके लिए जो वार्ताएँ प्रसारित की गयीं थीं उनमें कई उस समयकी सामयिक घटनाओं और विज्ञानसे सम्बन्धित थीं और इनमें ऐसे बहुतसे शब्द और विचार थे, जिन्हें ध्यानसे सुननेकी आवश्यकता जो फिर भी श्रोताओंमें उम्हें ममता।

[२] जिन वार्ताओंमें आपके दर्जनसे कम मुख्य बातें होती हैं वे समय-समयमें आसान होती हैं। एक मुख्य बातकी व्याख्या और विस्तारमें वार्ताकार एकसे दो मिनटका समय लपाता है।

[३] बोधगम्यताके लिए पुस्तकीय-गद्य-शैलीकी अपेक्षा सहज एवं सजीव शैली अनिवार्य होती है।

[४] जो विचार भाव मात्र [abstract] हैं उन्हें बृहत्तोति समझना जरूरी है। ही यह ध्यान रखत हुए कि छोटा मूक विचारोंके साथ बृहत्तोटा सम्बन्ध समझता रहे, और मूक विषयकी जगहा बृहत्तोटर ही अधिक ध्यान न ले।

[५] जिन बार्ताओंमें विचारोंका विकास तक-संभव रीतिमें नहीं होता न सहज बोधगम्य नहीं होती।

[६] कम बोधगम्य बार्ताएँ ज्योताओंमें अधिक ज्ञानका अनुमान कर लेती हैं।

[७] बार्ताकी बोधगम्य बनानेके लिए मुख्य-मुख्य बार्तापर विशेष जोर देना जरूरी है।

[८] साहित्यिक दृष्टावृत्तियोंसे बार्ताकी बोधगम्यतामें बाधा पड़ती है।

[९] कठिन शब्दोंके बहुत अधिक होनासे भी बोधगम्यतामें बाधा होती है।

[१०] संयुक्त और विषय बाधोंसे पूरा लम्बे-लम्बे वाक्य भी समझने में कठिन होते हैं।

[११] बहुत अधिक बार्तास्वाभाविक रीतिसे भी बोधगम्यतामें बाधा पड़ती है।

[१२] बार्ता-प्रसारणके समय बोलनेकी गति तीव्र होनेसे भी बोधगम्यता कम होती है।

इनके आधारपर यह सहज ही कहा जा सकता है कि रेडियो-बार्ताकी विद्यमानाएँ हैं : सरसता स्वाभाविकता एवं सुसंगतता। इन्हें मानना कठम बनाकर कोई भी रेडियो-बार्ता सफल हीनी इनमें सन्देह नहीं।

उद्धृत रचनाशौकी सूची

रेडिवी-सेखन
 कलाके कक्षमें यथाय और कल्पना
 मस्त्वलमें मनोरंजनके साधन
 संचार एवं परिवहलका विकास
 पुनीता
 क्वारकी छाँस
 तीसरी कमल अर्थात् मार वये मुलप्रथम
 यह राक्ष्माग है
 बदरीनाथ
 भीर्कोका वेद कलाशा
 गीता-प्रबचन
 एव मौकेपर
 महायानमें विज्ञानका
 प्रबचन
 पंचवर्षीय यौवना और वारी
 मनीष भारद्वाज तीर्थस्वात
 भाषाय वस्तुमका हरहार
 रोमांस
 सर्वोदय

सिद्धनाथकुमार
 रामनाथ मुमन
 बेबीकास सागर
 कमलेश्वरी शरण
 डा० धमबीर भारती
 गमनरेस पाठक
 लक्ष्मीस्वरनाथ रतु
 मन्मथशरण लपाध्याय
 बिष्णु प्रभाकर
 गौबिन्ददास
 बिनोबा मावे
 रामकल कनीपुरी
 रघुबीर
 बिनोबा माथ
 गोविन्दा मुकर्जी
 आर० आर० आशिष्कर
 डा० रामनिरंजन पाण्डेय
 धम्मुरल जियाठी
 अयप्रकाश नारायण

जयबीराचन्द्र बोर
 बीरन-बीमाका राष्ट्रीयकरण
 बर्णाका व्यक्तित्व
 कवि-सम्मेलन और मुसाबरे
 कवि-सम्मेलनोंके कङ्कूबे मीठे अनुभव
 पुराणोंमें प्रतीक
 स्त्रियोंके कार्यक्षेत्र पत्रकारिता
 प्रेमचन्दकी कवि
 बाबूका पत्र-साहित्य
 रामकृष्ण परमहंस
 श्रद्धा बदायु
 बीनेका सलीला
 हिन्दोमें व्यंग्य
 पत्नी सम्प्रभूमिद्वय—
 जार्ज अरन्डेल
 समताका सिद्धान्त
 मेरा व्यवसाय और साहित्य-नृजन
 निम्नी—नर्द और पुष्पी
 आरका कर्मा
 देवबाहा
 पोस्त
 पुस्तकें जिनसे मैंने सीखा
 बनडापी मुरगा
 राजका बोझ और सचका निवारण
 भारतकी पुरानी राजनीति

पौरख प्रसार
 नन्दभाऊ ऐण
 चन्द्रकका बुबे
 रजुपतिप्रदाय 'किण्ड
 डा० हरिबंदाय 'बचन
 भीकनकाठ आनेव
 सरला गुप्ता
 कर्णूयालाक मिथ प्रकाकर'
 हरिभाऊ जवाभ्याम
 बाबूलाक पाछीवाल
 रामचन्द्र कर्मा
 रवींद्र बहुमद सिद्दीकी
 नसिमबिलोवन कर्मा
 रामबाटीसिद्ध बिलकर'
 हरिभाऊ जवाभ्याम
 विश्वम्भरलाक पाण्डेय
 राजेंद्रलाक हांडा
 एम० मुकीष
 ब्रजनन्दन आजाद
 जैनेन्द्र कुमार
 मिर्जा म्दमूर शिण
 रामचन्द्रादुर
 डा० लम्पूचनिम्ब
 एम० एम० छाई
 बीकाचन्द्र देव बहुस्पति

